103

शोधादर्श

७२

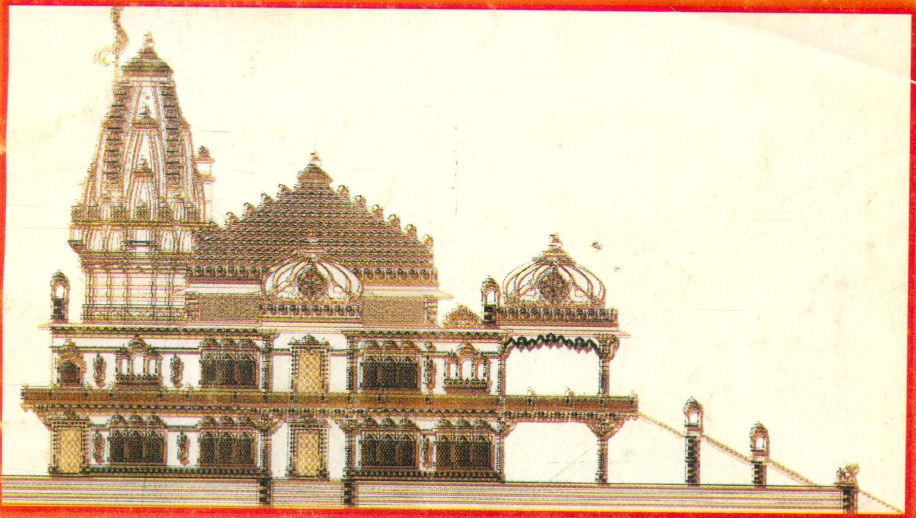

भगवान महावीर की जन्म-भूमि
वैशाली में संकल्पित निर्माणाधीन मंदिर

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

भगवान महावीर

आद्य सम्पादक	:	(स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
पूर्व प्रधान सम्पादक	:	(स्व.) श्री अजित प्रसाद जैन
पूर्व सम्पादक	:	(स्व.) श्री रमा कान्त जैन
मार्गदर्शक	:	डॉ. शशि कान्त
सम्पादक	:	श्री नलिन कान्त जैन
सह–सम्पादक	:	श्री सन्दीप कान्त जैन
	:	श्री अंशु जैन 'अमर'
	:	डॉ. (श्रीमती) अलका अग्रवाल

प्रकाशक :

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ - २२६ ००४, टेलीफोन सं. (०५२२) २४५१३७५

णाणं णरस्स सारं - सच्चं लोयम्मि सारभूयं

ज्ञान ही मनुष्य जीवन का सार है

सत्य ही लोक में सारभूत तत्व है

शोधादर्श -७२

वीर निर्वाण संवत् २५३७ **मार्च, २०११ ई.**

विषय क्रम

1.	सम्पादकीय	श्री नलिन कान्त जैन	३-४
2.	गुरुगुण–कीर्तन : कविवर श्री बनारसीदास	श्री रमा कान्त जैन	५-१२
3.	जैनी अहिंसा	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	१३-१४
4.	भगवान महावीर की जन्मभूमि	श्री अजित प्रसाद जैन	१५-१६
5.	समण सुत्तं : परिचय एवं समीक्षा	डॉ. शशि कान्त	१७-२१
6.	Some Reflection on the Samana Suttam	डॉ. सागरमल जैन	२२-२४
7.	नित्य प्राकृत सामायिक पाठ	डॉ. प्रेम सुमन जैन	२५-३३
8.	ईश्वर, विज्ञान और भारतीय जैन मान्यता	वैद्य प्रकाश चन्द्र जैन 'पाण्ड्या'	३४-३६
9.	जय महावीर नमो ! (पद्य)	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	३७
10.	तुम्हें जीना है (पद्य)	श्री राजीव कान्त जैन	३८
11.	सब कुछ नहीं देता (पद्य)	श्री अमरनाथ	३६
12.	परिवेश (पद्य)	डॉ. परमानन्द जड़िया	४०
13.	चमत्कारी गुरु	श्रीमती शेफाली मित्तल	४१-४२

14. शोध सारांश : गुणस्थान का अध्ययन — डॉ. श्रीमती दीपा जैन — ४३-५२

15. साहित्य–सत्कार : — डॉ. शशि कान्त — ५३-६०
बुद्धिरसायण वावन दोहा;
Prakrit Primer; श्रवणचरितोपाख्यान;
दिशाबोध (जैन पत्रकारिता विशेषांक);
धर्ममंगल; दिव्यदेशना; दर्शन का साक्षी;
अक्षराभिषेक; अनेकान्त; तुलसी प्रज्ञा;
मानस चन्दन; शाश्वत धर्म

16. जन्म जयंती पर पुनीत स्मरण — श्री नलिन कान्त जैन — ६१-६२
श्री अजित प्रसाद जैन
डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
श्री रमा कान्त जैन

17. आभार — ६२
18. स्मृतिशेष पिताजी श्री रमा कान्त जैन — श्री अंशु जैन 'अमर' — ६३-६४
19. अभिनन्दन — ६५-६७
20. शोक संवेदन — ६८

21. समाचार विविधा — ६९-७३
प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली
उज्जैन में जैन पुरातत्व संग्रहालय
अक्षराभिषेकोत्सव 2011
अखिल भारतीय श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक युवक महासंघ
चारित्र चक्रवर्ती शान्तिसागर महाराज के अवदान पर राष्ट्रीय कान्फ्रेंस
डॉ. पन्ना लाल जैन की जन्म शताब्दी
नालन्दा विश्वविद्यालय
जैन गणित पाण्डुलिपियों पर राष्ट्रीय सेमीनार
सुरक्षा हेतु सावधानी अपेक्षित

22. पाठकों के पत्र — ७४-८०
श्री अमरनाथ, डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव
श्री ओंकारश्री, श्री जितेन्द्र कुमार जैन
पं. निहालचन्द जैन, डॉ. परमानन्द जड़िया,
श्री प्रेमकुमार जैन, श्री बी. डी. अग्रवाल,
डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु', श्री मुकेश जैन,
डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, वैद्य राजेश चन्द्र जैन,
श्री ललित कुमार नाहटा, पं. सरमनलाल जैन 'दिवाकर'

सम्पादकीय

सुधी पाठकों और विद्वत् जगत द्वारा **शोधादर्श** के सम्बन्ध में जो अभिशंसात्मक अभिमत हमें प्राप्त होते रहे हैं उनसे हमें अपने कार्य में सतत् ऊर्जा और प्रेरणा प्राप्त होती रही है।

आगामी वैशाख शुक्ल त्रयोदशी तदनुसार १६ अप्रैल को भगवान महावीर की जन्म-जयंती है। हमारा प्रयास रहा है कि इस उपलक्ष में भगवान महावीर के जन्म स्थान वैशाली में निर्माणाधीन मंदिर का चित्र आवरण पृष्ठ पर दिया जाये। भगवान महावीर स्मारक समिति के अध्यक्ष श्री एन.के.सेठी (अवकाश-प्राप्त आई.ए.एस.), जयपुर, के सौजन्य से निर्माणधीन मंदिर के सम्बन्ध में उपयोगी सूचनाएं और चित्र प्राप्त हो सके हैं जिसके लिए हम उनके आभारी हैं। मंदिर अभी निर्माणाधीन है और डॉ. ऋषभचंद्र जैन से वार्ता करने पर विदित हुआ कि २०१३ में महावीर जयंती पर इसके पूर्ण होने की संभावना है।

भगवान महावीर के जन्म स्थान को हम लोग भूल चुके थे। पुरातात्विक अन्वेषणों से विगत डेढ़-सौ वर्षों में भारत के प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों की जानकारी प्राप्त हुई। उन्हीं के आधार से वज्जी गणतंत्र की राजधानी वैशाली की जानकारी प्राप्त हुई। वैशाली के निकट वासोकुण्ड महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ का निवास स्थान था और वही महावीर का जन्म स्थान भी था। वज्जी गणतंत्र में लिच्छवि और ज्ञातृक कुल सम्मिलित थे। महावीर के नाना राजा चेटक इसके प्रधान थे और वे लिच्छवी कुल के थे, महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ ज्ञातृक कुल के थे।

२३ अप्रैल १९५६ को तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी ने वासोकुण्ड पर भगवान महावीर की स्मृति में स्मारक निर्माण हेतु शिलान्यास किया था। तत्पश्चात् राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन और डॉ. जाकिर हुसैन ने भी वहां भगवान महावीर को अपनी विनयांजलि अर्पित की थी। प्रति वर्ष महावीर जयन्ती को वहाँ वैशाली महोत्सव का आयोजन किया जाता है। स्मारक रूप में मंदिर निर्माण करने का निश्चय भगवान महावीर के २६००वें जन्म दिवस पर अप्रैल २००१ में दोहराया गया परन्तु उसके बाद भी ४ नवम्बर २००४ को ही मंदिर का शिलान्यास किया जा सका और उसके भी प्रायः तीन वर्ष बाद २६ अगस्त २००७ को निर्माण कार्य का शुभारंभ किया गया। निर्माणाधीन स्मारक का जो चित्र संकल्पित किया गया, उसी का चित्रण इस अंक के मुख पृष्ठ पर दिया जा रहा है।

इस संदर्भ में यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि इस स्मारक से सम्बन्धित विभिन्न पेम्फ्लेट और ब्रोशर में यह प्रचारित किया जा रहा है -

"भगवान महावीर जन्मभूमि
वसोकुण्ड, विदेह कुण्डपुर, वैशाली,
जिला-मुजफ्फरपुर (बिहार)- पिन ८४४१२८"

यह विवरण सही नहीं है। वैशाली अब जिला मुजफफरपुर का भाग नहीं है वरन् यह स्वतंत्र जिला है। वैशाली जिले का स्वतंत्र अस्तित्व १९८६ से पहले ही अवस्थिति में आ गया था। अतः पते में जिला मुजफ्फरपुर का उल्लेख उचित नहीं है।

वैशाली में स्थित 'प्राकृत, जैनशास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान' का पता भी तदनुसार ही सूचित और प्रचारित किया जाना उचित होगा।

इतिहास के सम्बन्ध में यथासंभव सही सूचना ही प्रसारित किया जाना उपादेय है। धर्म के उन्माद में अनर्गल बातों का प्रसारण ऐतिहासिक तथ्यों को झुठलाने में हेतु होता है और वह सम्पूर्ण ऐतिहासिकता को ही संदिग्ध कर देता है। कुमारात्याधिकरण की एक सील (मुद्रा) जो वैशाली के खण्डहरों में प्राप्त हुई है, के सम्बन्ध में यह प्रचारित किया जाना कि राजकुमार वर्धमान न्याय के उपरान्त इस सील का प्रयोग करते थे, नितान्त मिथ्या कथन है। जो लेख इस मुद्रा पर अंकित है वह गुप्तकालीन ब्राह्मी में अभिलिखित है और इसका समय महावीर से प्रायः १००० वर्ष बाद का है। भगवान महावीर जन्मभूमि से सम्बन्धित पेम्फ्लेट में इसका उल्लेख और प्रसारण देखकर हमें विस्मय के साथ क्षोभ भी हुआ। जो महानुभाव वैशाली में भगवान महावीर के जन्म स्थल पर स्मारक स्वरूप मंदिर के निर्माण से सम्बन्धित हैं, उनसे हमारा विनम्र निवेदन है कि वे किसी भी पुरातात्विक अवशेष के सम्बन्ध में समुचित जानकारी प्राप्त करने के बाद ही कोई कथन प्रसारित करें।

इस अंक में एक शोध-प्रबंध का सार-संक्षेप प्रकाशित किया जा रहा है। **समण सुत्तं** के सम्बन्ध में भी डॉ. शशि कान्त और डॉ. सागरमल जैन के लेखों के माध्यम से वस्तुस्थिति की जानकारी दी जा रही है।

भगवान महावीर की जन्म जयंती के उपलक्ष में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन द्वारा रचित 'महावीर कीर्तन - जय महावीर नमो', भी इस अंक में दिया जा रहा है।

सभी पाठकों एवं विद्वान लेखकों के सहयोग और सद्भाव के लिए सम्पादक मंडल अपना आभार व्यक्त करता है।

- नलिन कान्त जैन, सम्पादक

हिन्दी व्योम के जाज्वल्यमान नक्षत्र

कविवर श्री बनारसीदास

(संवत् १६४३-१७०१, ईस्वी सन् १५८६-१६४४)

हिन्दी भाषा में अभी तक उपलब्ध प्रथम आत्म-चरित्र कविवर बनारसीदास का है। उक्त आत्म-चारित्र से विदित होता है कि ये श्रीमालवंशी बिहोलिया गोत्री, जैन धर्मानुयायी जौहरी मूलदास के पौत्र और खरगसेन के पुत्र थे, इनका जन्म जौनपुर में संवत् १६४३ (ईस्वी सन् १५८६) की माघ शुक्ल एकादशी, रविवार, को हुआ था। माता-पिता ने इनका नाम विक्रमाजीत रखा था, जिसे बाद में एक बनारसी पुजारी के कहने से बदल कर बनारसीदास कर दिया गया। आजीविका के लिए इन्होंने अपनी कुल-रीति के अनुसार वणिक्-वृत्ति अपनाई, किन्तु ये बहुत कुशल व्यापारी नहीं रहे। इन्हें व्यापारिक जीवन में काफी संघर्ष करना पड़ा। काफी परिश्रम के बदले अनेक बार दुर्योग से हानि उठानी पड़ी और लाभ नगण्य रहा।

बचपन में ही संग्रहणी और शीतला के शिकार हुए। युवावस्था में पग रखते ही कुष्ठ रोग ने आ घेरा और मियादी बुखार भी इनका मेहमान बना। तीन विवाह हुए और नौ सन्तानें (दो सुता और सात सुत) हुईं और इनके सामने ही मर गईं। पहला विवाह ग्यारह वर्ष की बाल्यावस्था में हुआ था। जिस दिन विवाह कर घर लौटे उसी दिन इनकी नानी का निधन हो गया और इनकी बहन ने जन्म लिया। इस प्रकार शोक और हर्ष का संगम एक साथ बाल्यावस्था में ही देखने को मिला।

भोले और भावुक होने के कारण बनारसीदास सहज ही दूसरों के बहकावे में भी आ जाते थे। प्रतिदिन एक दीनार पाने के लोभ में एक सन्यासी वेशधारी व्यक्ति के कहने पर ये एक वर्ष तक शौचालय में बैठ कर गुप्त रूप से एक मन्त्र साधते रहे और जब सालभर की साधना के बाद कुछ हाथ न लगा तो पता लगा उसने इन्हें भोंदू बना दिया। इसी प्रकार एक बार एक योगी वेशधारी व्यक्ति से शिव-गृह (मुक्ति) पाने की लालसा से संखोली और पूजा की सामग्री ले ली और शिव-पूजन करने लगे, किन्तु विपत्तियों में शिव की सहायता न पा दुखित हो गये।

आठ साल की उम्र में गुरु पाण्डे की चटसाल में अक्षर बाँचने और लेखन सीखने हेतु गये और एक वर्ष में ही व्युत्पन्न मति हो गये। उस जमाने में वणिक पुत्र को अधिक पढ़ने की आवश्यकता नहीं थी। उसके लिए तो बनारसीदास के शब्दों में गुरुजनों की यही सीख थी -

बहुत पढ़े बांभन अरु भाट।
बनिकपुत्र तो बैठे हाट।।

बहुत पढ़े सौ माँगै भीख।
मानहु पूत बड़े की सीख।।

फिर भी इन्होंने चौदह वर्ष की आयु में पण्डित देवदत्त के पास नाममाला-अनेकार्थ, ज्योतिष, अलंकार, लघु कोकशास्त्र तथा स्फुट ४०० श्लोकों का अध्ययन किया। तदनन्तर मुनि भानुचन्द से पंचसन्धि की रचना, सामायिक पडिकोना (प्रतिक्रमण) आदि धार्मिक विधियां, छन्द, कोश, श्रुतबोध ग्रन्थ आदि को सीखा। यह विद्याव्यसन और श्रृंगारिकता की ओर उनका रुझान ऐसा बढ़ा कि इन्हें दो वर्ष तक खान-पान और रोजगार की भी सुध नहीं रही और इन्होंने १४ वर्ष की अल्पवय में ही एक हजार दोहे-चौपाई में **'नवरस'** नामक श्रृंगारिक रचना रच डाली। यद्यपि बाद में एक दिन गोमती नदी के पुल पर मित्रों के बीच अपनी पोथी बांचते हुए मन में यह विचार उठे कि -

एक झूठ जो बोलै कोई
नरक जाई दुख देखे सोई।
मैं तो कलपित बचन अनेक,
कहे झूठ सब साँचु न एक।।

बस भावावेश में मित्रों के मना करते रहने पर भी तत्काल वह पोथी गोमती नदी में रद्दी की भाँति बहा दी। अपनी श्रृंगारिक रचना को इस प्रकार गोमती में बहा देने वाले बनारसीदास ने आगे चलकर अपने समकालीन उन कवियों पर जो स्त्रियों के रूप-वर्णन में निमग्न रहते थे, चोट करते हुए लिखा था -

मांसकी गरंथि कुच कंचन-कलस कहैं,
कहै मुख चंद जो सलेषमाको घरु है।
हाड़ के दसन आहि हीरा मोती कहैं ताहि,
मांस के अधर ओंठ कहैं बिंबपरू है।।
हाड़ दण्ड भुजा कहैं कौंलनाल कामधुजा,
हाड़ ही के थंभा जंघा कहैं रंभातरु है।
योंही झूठी जुगति बनावैं और कहावैं कवि,
ये ते पर कहैं हम सारदा को बरु है।।

आगरा में एक बार अपनी पूंजी खो चुकने और बिल्कुल खाली हाथ होने पर समय काटने के लिए रात में कुतबन की **मृगावती** और मंझन की **मधुमालती** नामक सूफी प्रेम-काव्यों को बांचने लगे जिन्हें सुनने के लिए इनके पास दस-बीस आदमी इकट्ठे हो जाते थे।

एक अध्यात्मज्ञानी व्यापारी के मन में कोमल भावनाओं का होना विरल माना जाता है, किन्तु बनारसीदास इसके अपवाद थे। ये तो एक भावुक कवि और असफल

व्यापारी थे। जिस किसी ने भी इन पर अथवा इनके परिवार पर कभी कोई उपकार किया उसके कृतज्ञ होना न भूले। इस प्रसंग में करमचन्द माहुर बनिया जिसने विपत्ति के समय इनके पिता की सहायता की थी और आगरा का वह कचौड़ीवाला जिसने बनारसीदास को छह-सात महीने तक उधार कचौड़ी खिलाई थी, उल्लेखनीय हैं। अपने मित्रों की स्मृति इन्हें बनी रही। अपने मित्र नरोत्तमदास पर तो बनारसीदास ऐसे रीझे कि इन्होंने उन पर निम्नलिखित कवित्त रच डाला और उसे भाट की तरह घर-बाजार जहाँ-तहाँ पढ़ते फिरे -

नवपद ध्यान गुनगान भगवंत जी को,
करत सुजान दिढ़ज्ञान जग मानिये।
रोम रोम अभिराम धर्मलीन आठो जाम,
रूप-धन-धाम काम-मूरति बखानिये।।
तन को न अभिमान सात खेत देत दान,
महिमान जाके उसको वितान तानिये।
महिमा निधान प्रान प्रीतम बनारसी को,
चहुपद आदि अच्छरमह नाम जानिये।।

'नवरस' नामक उपर्युक्त श्रृंगारिक रचना के अतिरिक्त बनारसीदास ने कवि धनञ्जय की संस्कृत **'नाममाला'** और **'अनेकार्थनाममाला'** के अनुकरण पर हिन्दी में एक पद्यबद्ध कोश **'नाममाला'** की रचना विक्रम संवत् १६७० (ईस्वी सन् १६१३) में आश्विन शुक्ल दशमी सोमवार को पूर्ण की थी जिसमें २०० छन्द थे, जिनमें से अब १७५ उपलब्ध हैं।

बनारसीदास ने बहुत सी फुटकर रचनाएं भी की। **'अजित छन्द'** का उल्लेख तो **'नाममाला'** के साथ ही उनके आत्म-चरित में मिलता है। उनकी प्रकीर्ण रचनाओं का एक संकलन उनकी मृत्यु के उपरान्त संवत् १७०१ (ईस्वी सन् १६४४) में पं. जगजीवन नामक कवि ने आगरा में **'बनारसी विलास'** नाम से किया था और उसे इस शती के आरम्भ में पण्डित नाथूराम प्रेमी ने जब सम्पादित किया तो उसमें साठ छोटी-बड़ी पद्यात्मक रचनाएं थी। बाद में उपलब्ध दो और रचनाओं को मिलाकर डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल ने ६२ रचनाओं का **'बनारसी विलास'** सम्पादित किया। डॉ. नेमीचन्द शास्त्री ने अपने **हिन्दी जैन-साहित्य परिशीलन भाग-१** में कवि बनारसीदास की रचनाओं में बरवै, सोलह तिथि, तेरह काठिया, ज्ञान पच्चीसी, अध्यात्म बत्तीसी, मोक्षपैडी, शिव पच्चीसी, भवसिन्धु चतुर्दशी और अध्यात्म-हिन्डोलना का उल्लेख किया है, ये इनकी प्रकीर्ण रचनाओं में आती हैं। आचार्य सोमप्रभ की संस्कृत **'सूक्त मुक्तावली'**, अमृतचन्द्र आचार्य के संस्कृत **'समयसार कलश'** और आचार्य कुमुदचन्द्र के **'कल्याण मन्दिर स्तोत्र'** का

बनारसीदास ने जो हिन्दी पद्यानुवाद किया था उसे भी **'बनारसी विलास'** में संकलित कर लिया गया है। इन्होंने विभिन्न राग-रागिनियों पर आधारित गीत-पद भी रचे थे जिनसे इनका शास्त्रीय-संगीत ज्ञान भी विदित होता है।

डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन ने कविवर बनारसीदास पर अपने शोधप्रबन्ध में इनकी एक और उपलब्ध आध्यात्मिक रचना **मोह-विवेक युद्ध** का उल्लेख किया है जिसमें ११० छन्द हैं। डॉ. जैन ने भाषा सारल्य, भावों की स्वाभाविक उठान तथा प्रसादपरक शैली के आधार पर उसे, कृति में रचना-काल इंगित न होने के कारण, कविवर की प्रारम्भिक अवस्था की अर्थात् श्रृंगारिक जीवन से विरक्ति के ठीक पश्चात् की रचना बताया है।

संवत् १६९३ (ईस्वी सन् १६३६) की आश्विन शुक्ल त्रयोदशी, रविवार, को मुगल बादशाह शाहजहां के राज्यकाल में आगरा में पं. रूपचन्द आदि ५ मित्रों की प्रेरणा से बनारसीदास ने **समयसार नाटक** की रचना पूर्ण की थी। आचार्य कुन्दकुन्द के प्राकृत ग्रन्थ **समयसार प्राभृत** जिस पर अमृतचन्द्र आचार्य ने संस्कृत में **आत्मख्याति टीका** और **समयसार कलश** रचे थे तथा पाण्डे राजमल्ल ने **बालबोधनी टीका** लिखी थी, पर आधारित होते हुए भी मौलिकता लिये हुए यह एक विशिष्ट आध्यात्मिक रचना है। कोमल कान्त पदावली तथा कुछ नवीन उद्भावनाओं के प्रयोग द्वारा इस कृति के माध्यम से बनारसीदास ने आत्म-तत्व जैसे नीरस विषय की सरस सरिता हिन्दी-रत्नाकर में प्रवाहित की है। इस कृति में ३१० सोरठे और दोहे, २४५ इक्तीसा सवैये, ८६ चौपाई, ३७ तेईसा सवैये, २० छप्पय, १८ कवित्त (घनाक्षरी), ७ अडिल्ल, ४ कुण्डलियां मिलाकर कुल ७२७ पद हैं। कदाचित् इस कृति में विभिन्न भावों का नाटकीय ढंग से चित्रण करने के कारण कवि ने इसे नाटक की संज्ञा दी है, यद्यपि शास्त्रीय पद्धति से यह नाटक की परिभाषा के परे है।

पं. रतनचंद भारिल्ल के शब्दों में "सम्पूर्ण साहित्यिक गरिमाओं से युक्त **समयसार नाटक** हिन्दी साहित्य की बेजोड़ कृति है, जिसने उन्हें महाकवि तुलसीदास के समकक्ष प्रतिष्ठापित किया और जिसके छन्द **रामचरितमानस** की भांति ही जन-जन के गेय बन गये थे।" संवत् १६९८ (ईस्वी सन् १६४१) के अगहन मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी, सोमवार, के दिन पचपन वर्ष की आयु में कवि के मन में आत्म-चरित लिखने का विचार आया ओर उन्होंने नर आयु एक सौ दस वर्ष मान कर पचपन वर्ष की आप-बीती को **'अर्द्ध कथानक'** नाम से मध्य देश (आगरा-मथुरा अंचल) की जनपदीय भाषा में ६७५ दोहे-चौपाई में लिपिबद्ध कर डाला।

एक गृहस्थ आध्यात्मिक कवि की यह आत्म-कथा बड़ी मार्मिक और कई अर्थों में अनूठी है। जहां बनारसीदास के समकालीन तुलसीदास जी के जीवन की कुछ घटनाओं के विषय में प्रामाणिक आधार के अभाव में आज भी विद्वानों में मतभेद है

वहां बनारसीदास ने स्वयं अपना जीवन-वृत्त लिखकर विद्वानों को इस विषय में ऊहापोह करने का कोई अवसर नहीं दिया। इनके जीवन की एक-एक घटना का ज्ञान काल-क्रम से पाठकों को इस पोथी से हो जाता है। इन्होंने इसमें अपना वंश-परिचय तो दिया ही है, जौनपुर जहां ये जन्मे वहां के शाहों की वंशावली भी क्रम से दी है। मुगल बादशाह अकबर, जहांगीर और शाहजहां के राज्यकाल में जीने वाले कवि बनारसीदास की जीवनी, जनता की बादशाह में आस्था, उसकी मृत्यु हो जाने पर दूसरे बादशाह के गद्दीनशीन होने तक लोगों में भय व्याप्त हो जाने तथा पुरहाकिम-नवाबों द्वारा जनता, विशेषकर व्यापारियों, पर अत्याचार किये जाने का सजीव चित्र प्रस्तुत करती है। संवत् १६५३ (ईस्वी सन् १५९६) में अकाल पड़ने तथा संवत् १६७३ (ईस्वी सन् १६१६) में आगरा में प्लेग का प्रकोप होने की बात उक्त आत्म-चरित से ज्ञात होती है। कवि बनारसीदास में इतिहास-भावना कितनी कूट-कूट कर भरी थी उसका ज्वलन्त उदाहरण इनका यह ग्रन्थ है और इसे आत्म-इतिहास कहना अधिक समीचीन होगा।

पचपन वर्ष तक जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव देख चुकने, सुख-दुख को भोगने और कटु-मधुर अनुभवों का आस्वाद ले लेने के उपरान्त बनारसीदास द्वारा प्रस्तुत यह आत्मचरित, जिसमें इन्होंने अपनी किसी दुर्बलता या दोष को भी न छिपाया हो, वास्तव में बड़ा ही मार्मिक है और इनके साहस का द्योतक है।

इस **'अर्द्ध कथानक'** का सम्पादन कर इसे अन्य महत्वपूर्ण अनुपूरक सामग्री के साथ अपने हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय से प्रकाशित करने का श्रेय पं. नाथूराम प्रेमी को है। **'अर्द्ध कथानक'** के सम्बन्ध में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है - "हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस ग्रन्थ का एक विशेष स्थान तो होगा ही, साथ ही इसमें वह संजीवनी शक्ति विद्यमान है जो इसे अभी कई सौ वर्षों तक जीवित रखने में सर्वधा समर्थ होगी। सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता, निरभिमानिता और स्वाभाविकता का ऐसा जबरदस्त पुट इसमें विद्यामान है कि साहित्य की चिरस्थायी सम्पत्ति में इसकी गणना अवश्यमेव होगी। हिन्दी का तो यह सर्व प्रथम आत्मचरित है ही, पर अन्य भारतीय भाषाओं में इस प्रकार की और इतनी पुरानी पुस्तक का मिलना आसान नहीं है।"

बनारसीदास की अन्तिम ज्ञात रचना संवत् १७०० (ईस्वी सन् १६४३) की फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को पूर्ण की गई **'कर्म प्रकृति विधान'** है। कवि के निधन की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है। चूंकि **'बनारसी विलास'** का संकलन इनके मित्र पं. जगजीवन द्वारा इनकी मृत्यु के उपरान्त संवत १७०१ को चैत्र शुक्ल द्वितीया को किया गया बताया जाता है अतः इनकी मृत्यु **'कर्म प्रकृति विधान'** की रचना पूर्ण होने के पश्चात् तथा **'बनारसी विलास'** के उक्त संकलन के पूर्व के अन्तराल में होने का अनुमान है।

मूलतः कवि होते हुए भी गद्य का क्षेत्र बनारसीदास से अछूता नहीं रहा और इन्होंने **'परमार्थ वचनिका'** तथा **'उपादान निमित की चिट्ठी'** नाम से दो छोटी-छोटी रचनाएं गद्य में भी लिखीं। हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक काल की इन रचनाओं का हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास में अपना महत्व है।

ऐसा कहा जाता है कि एक बार गोस्वामी तुलसीदास अपने शिष्यों के साथ आगरा गये थे और वहाँ उनकी बनारसीदास से भेंट हुई थी। कई दिन दोनों कवियों का सत्संग रहा। तुलसीदास ने बनारसीदास को अपनी **'रामायण'** की एक प्रति भेंट की ओर बनारसीदास ने उन्हे अपनी **'पार्श्वनाथ स्तुति'**। जब तुलसीदास ने **'रामायण'** के बारे में उनका अभिमत जानना चाहा तो व्युत्पन्नमति बनारसीदास ने उन्हें निम्न छन्द लिखकर भेंट किया -

विराजै रामायण घट मांहिं।
मरमी होय मरम सो जाने, मूरख मानै नाहिं।।१।।
आतमराम ज्ञान गुन लछमन, सीता सुमति समेत।
शुभोपयोग वानरदल मंडित, वर विवेक रन खेत।।२।।
ध्यान धनुष टंकार शोर सुनि, गई विषयदिति भाग।
भई भस्म मिथ्यातम लंका, उठी धारणा आग।।३।।
अरे अज्ञान भाव राक्षसकुल लरे निकांछित सूर।
जूझे राग-द्वेष सेनापति, संसै गढ़ चकचूर।।४।।
विलखात कुंभकरण भव विभ्रम, पुलकित मन दरयाव।
थकित उदार वीर महिरावण, सेतुबन्ध समभाव।।५।।
मूर्छित मंदोदरी दुराशा, सजग चरन हनुमान।
घटी चतुर्गति परणति सेना, छूटे छपकगुण बान।।६।।
निरखि सकति गुन चक्र सुदर्शन, उदय विभीषण दीन।
फिरे कबंध मही रावण की, प्राणभाव शिरहीन।।७।।
इस विधि सकल साधु घट अंतर, होय सहज संग्राम।
यह विवहार दृष्टि रामयाण, केवल निश्चय राम।।८।।

तत्कालीन सन्त कवि सुन्दरदास (विक्रम संवत् १६५३-१७४६; ई. सन् १५९६-१६८९) से भी इनका समागम होने की बात कही जाती है। **सुन्दर ग्रन्थावली** की भूमिका में पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने महन्त गंगाराम और झुंझनु के श्रीमाल सेठ अमोलकचन्द से सुनी हुई बात के आधार पर लिखा है - 'प्रसिद्ध जैन कवि महात्मा बनारसीदास जी के साथ सुन्दरदास जी की मैत्री थी। सुन्दरदास जी देशाटन में जब आगरा गये तब ही बनारसीदास जी आदिकों के साथ संसर्ग हुआ था।' उन्होंने इन दोनों कवियों के बीच छन्दों के आदान-प्रदान की बात भी लिखी है।

चूंकि गोस्वामी तुलसीदास देहोत्सर्ग (विक्रम संवत् १६८०; ईस्वी सन् १६२३) और उपर्युक्त सन्त सुन्दरदास से कवि बनारसीदास के हुए साक्षात्कारों के संबंध में, उनके जीवन की प्रायः सभी छोटी-बड़ी घटनाओं का उल्लेख करनेवाला, संवत् १६९८ में विरचित **अर्द्ध कथानक** मौन है अतः इन किंवदन्तियों की प्रामाणिकता के विषय में, जैसा कि पं. नाथूराम प्रेमी का भी अभिमत है, कुछ कहना कठिन है।

बनारसीदास के हिन्दु-मुस्लिम (तुरुक) एकता सम्बन्धी निम्न दोहे हमें सन्त कबीर का स्मरण कराते हैं ओर यह दर्शाते हैं कि एक आस्थावान जैन भक्त होने के साथ ये कितने उदार दृष्टिकोणवाले थे -

एक रूप हिन्दु तुरुक दूजी दशा न कोई।
मन की दुविधा मानकर, भये एकसो दोई।।
दोऊ भूले भरम में, करें बचन की टेक।
'राम राम' हिन्दु कहें, तुरुक 'सलामालेक'।।
इनके पुस्तक वाचिएं, वे हू पढ़े कितेब।
एक वस्तु के नाम द्वय, जैसे 'शोभा' 'जेब'।।

आजकल की हिन्दु-मुस्लिम समस्या का निदान भी इसमें इंगित है।

वैसे तो प्रायः हर युग में रहा है, आज भी सत्ता का हर ओर बड़ा जोर-शोर है। प्रायः हर कोई सत्ता पाने के पीछे बावला दीख पड़ता है। कवि बनारसीदास द्वारा अबसे साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व आत्मसत्ता के प्रसंग में रचित निम्न सवैया पठनीय है -

साधी दधि मंथ मैं अराधी रस पंथनि में,
जहां तहां ग्रंथनि में सत्ताही कौ सोर है।
ग्यान भान सत्ता में सुधा निधान सत्ता ही में,
सत्ता कौ दुरनि सांझ सत्ता मुखभोर है।।
सत्ता कौ सरूप मोख सत्ता भूल यहै दोष,
सत्ता के उलंघे धूमधाम चहुं वोरे है।।
सत्ता की समाधि में विराजि रहै सोई साहु,
सत्तातैं निकसि और गहै सोई चोर हैं।।

इस सवैये की अन्तिम दो पंक्तियों का अभिधा अर्थ तो आजकल की राजनीति पर भी सटीक बैठता है।

बनारसीदास रूपक रचने में पटु थे। जीव की शयनावस्था का एक रूपक निम्न सवैये में दृष्टव्य है -

काया चित्रकारी में करम परजंक भारी,
मायाकी सवारी सेज चादरि कलपना।

सैन करै चेतन अचेतनता नींद लिये,
मोह की मरोर यह लोचनकौ ढपना।।
उदै बल जोर यहै स्वासको सबद धोर,
विषे-सुख कारजकी दौर यहै सपना।
ऐसी मूढ दसामैं मगन रहै तिहूंकाल,
धावै भ्रमजाल में न पावैं रूप अपना।।

निम्न सवैये से सन्देह, उपमा आदि अलंकारों के माध्यम से किया गया मानव देह का चित्रण भी बनारसीदास के काव्य-शिल्प का परिचायक है -

रेत की सी गढ़ी किधी मढ़ी है मसान की सी,
अंदर अंधेरी जैसी कंदरा है सैल की।
ऊपर की चमक दमक पट भूषन की
धोखै लागै भली जैसी कली है कनेल की।।
औगुन की औंडी महा भौंडी मोह की कनौडी,
माया की मसूरति मूरती है मैल की।
ऐसी देह याहीके सनेह याकी संगतिसो,
ह्वै रही हमारी मति कोल्हू के से बैल की।।

उपयुक्त विवचेन से स्पष्ट है कि सरल स्वभावी, अध्यात्मरसिक कविवर बनारसीदास ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सत्यं-शिवं-सुन्दरं की त्रिवेणी प्रवाहित की थी, इन्होंने हिन्दी-रत्नाकर को अनमोल रत्नों से समृद्ध किया और ये वस्तुतः आज भी हिन्दी-व्योम के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। यद्यपि इधर बनारसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व के मूल्यांकन के सम्बन्ध में काफी कुछ कार्य हुआ है, फिर भी हिन्दी जगत में इन्हें इनका उचित स्थान प्राप्त होना अभी शेष है।

१- **अर्द्धकथानक,** संपा.- पं. नाथूराम प्रेमी, प्रका.-हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई (इस संस्करण में डॉ. मोतीचन्द्र, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी और डॉ. हीरालाल के विशिष्ट लेख भी सम्मिलित हैं।)

२- **वीरवाणी** (मासिक पत्रिका, जयपुर) **कविवर बनारसीदास विशेषांक।**

- श्री रमा कान्त जैन

(जैन विद्या संस्थान, दिगम्बर जैन, अतिशय क्षेत्र महावीर जी से १९९५ में प्रकाशित श्री रमा कान्त जैन की कृति **हिन्दी भारती के कुछ जैन साहित्यकार,** से साभार उद्धत।

बनारसीदास पर डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन का शोध-प्रबन्ध और २००६ में विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, से प्रकाशित श्री ज्ञानचन्द जैन की **कवि बनारसीदास की आत्मकथा** भी दृष्टव्य हैं। - सम्पादक)

जैनी अहिंसा

- डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

अहिंसा जैन धर्म की कुंजी है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय भावों द्वारा अपने या दूसरे के द्रव्य अथवा भाव प्राणों का घात करने (शारीरिक अथवा प्रमाद या असाावधानी के कारण मन-वचन-काय की किसी भी क्रिया से मानसिक कष्ट पहुंचाने आदि) को हिंसा कहा गया है, ऐसा न करना अहिंसा है। निश्चय से कषाय भावों का अभाव ही अहिंसा है और उनका सद्भाव ही हिंसा है, संक्षेप में यही जिनागम का रहस्य है।

निरावद्य ओर सावद्य के भेद से हिंसा दो प्रकार की होती हे। एक निर्ग्रन्थ अनागार जैन मुनि की क्रियाएं निरावद्य होती हैं अतः वह अशक्य परिहार कोटि की हिंसा को छोड़कर पूर्णतया अहिंसक होता है। सागार गृहस्थ की क्रियाएं सावद्य होती हैं। उसके लिये आरंभी, उद्योगी एवं विरोधी हिंसाएं अशक्य परिहार हैं, किन्तु संकल्पी हिंसा शक्य परिहार है, उसी का वह सर्वथा त्यागी होता है। जानबूझकर अपने स्वार्थ, आनन्द या विनोद के लिये अथवा असावधानता के कारण अपनी किसी चेष्टा से या वचनों से किसी भी दूसरे प्राणी के प्राणों का घात करना, उसे शारीरिक या मानसिक कष्ट पहुंचाना अथवा मन में उसका अहित चिन्तन करना या यह कार्य किसी अन्य से करवाना अथवा अन्य द्वारा किये जाने पर उसका अनुमोदन करना, संकल्पी हिंसा है। मांसाहार, मद्यपान, शिकार खेलना, दूसरों के घात से प्राप्त वस्तुओं का उपयोग करना, वैर-विरोध, वैमनस्य, चोरी, रक्तपात, बलात्कार, शोषण आदि प्रवृत्ति संकल्पी हिंसा के अन्तर्गत हैं। इन सबसे बचकर अपने जीवन व्यापार एवं व्यवहार को संयत, शिष्ट, सात्विक, दया एवं मैत्रीपूर्ण बनाना ही मनुष्य का धर्म है। सर्व प्रकार यत्नाचार पूर्वक बरतते हुए और उद्देश्य एवं आशय पवित्र रहते हुए फिर यदि किसी की हिंसा अपने से हो भी जाती है तो वह अपरिहार्य है। इसी प्रकार जीवन यापन एवं जीविकोपार्जन के निमित्त की जाने वाली क्रियाओं में सावधानीपूर्वक एवं न्यायतः बरतने पर भी जो हिंसा होती है वह आरंभी और उद्योगी कहलाती है और क्षम्य है। अपने प्राण,धन, कुटुम्ब, समाज, देश, धर्म आदि की रक्षा करने में आततायी, अत्याचारी या आक्रमणकारी की जो हिंसा की जाती है वह विरोधी हिंसा है और वह भी क्षम्य है। हां, यदि विरोधी अपने से निर्बल हो तो उसे पराजित करके भी उसे क्षमा कर देना ही उचित है। क्षमा तो वीरों का आभूषण है। कायर और डरपोक अपने

विरोधी को क्षमा नहीं कर सकते, किन्तु जो सच्चे वीर हैं वे ऐसी परिस्थिति में क्षमा प्रदान द्वारा ही विरोधी को सच्चे अर्थों में पराजित करते हैं।

जैनी अहिंसा के वास्तविक स्वरूप को न समझने तथा जैन इतिहास और साहित्य से अनभिज्ञ होने के कारण प्रायः कितने ही व्यक्ति जैनी अहिंसा को कायरता एवं डरपोकपन का कारण बता दिया करते हैं किन्तु वे नहीं जानते कि जैन धर्म की दृष्टि में जो कर्मशूर हैं वे ही धर्मशूर हो सकते हैं। एक सच्चा जैनी सर्वथा निर्भय होता है, सम्यक् दृष्टि को सात प्रकार के भय नहीं सताते। जैनाचार्यों ने स्पष्ट कथन किया है कि "आपत्ति आने पर उसे दूर करने के लिये धर्मात्मा व्यक्ति सद्यः तत्पर रहते हैं। जब तक तलवार, मन्त्र, बल और धन किसी प्रकार की भी सामर्थ्य स्वयं में है वे अपने पर या दूसरों पर आई विपत्ति अथवा बाधा को कदापि सहन नहीं कर सकते।" राजनीति के प्रसिद्ध जैन पंडित सोमदेवाचार्य के शब्दों में "अपने कर्तव्य के पालन करने में व्यक्ति जो हिंसा करता है वह क्षम्तव्य है।" और यह कि 'क्षत्रिय वीर उन्ही पर शस्त्र उठाते हैं जो रणक्षेत्र में युद्ध करने को उन के सम्मुख हों, अथवा जो उनके देश के शत्रु हों, कंटक हों, उसकी उन्नति में बाधक हों। वे दीन हीन एवं साधु आशय व्यक्तियों पर हाथ नहीं उठाते।' भारतीय इतिहास के विभिन्न युगो में जैन शूरवीरों ने सदैव स्वदेश, स्वधर्म और स्वजाति की रक्षा में अद्भुत शौर्य का परिचय दिया है जो कि उपरोक्त जैनी नीति का ज्वलन्त दृष्टान्त है। अस्तु, शुभचन्द्राचार्य के शब्दों में, 'सच्ची अहिंसा तो प्राणी मात्र के लिये माता के समान हितकारिणी, भार्या के समान प्रमोददायिनी और सरस्वती के समान शिक्षादात्री है।' वह वर्तमान विश्व की समस्याओं का एकमात्र समाधान है और विश्वबंधुत्व एवं स्थायी शान्ति स्थापित करने का एकमात्र साधन है।

भारत की प्राचीन श्रमण संस्कृति तथा अध्यात्म प्रधान महान मागध धर्म के सजीव सतेज प्रतिनिध के रूप में जैन धर्म, जैन दर्शन ओर जैन संस्कृति का भारतीय धर्मो,दर्शनों ओर संस्कृतियों में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के दार्शनिक चिन्तन, धार्मिक विचार एवं सांस्कृतिक विकास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

(अहिंसा के सम्बन्ध में यह लांछन लगाया जाता है कि उसी के कारण भारतवासियों को बार-बार पराजय और परतंत्रता झेलनी पड़ी। अहिंसा के आशय को सम्यक् रूप से जाने बिना यह लांछन लगाया जाता है। जैनी अहिंसा के उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होगा कि इस प्रकार लांछन लगाकर जैन धर्म को बदनाम करना सर्वथा उचित नही है। - सम्पादक)

भगवान् महावीर की जन्म-भूमि

- श्री अजित प्रसाद जैन

जैन धर्म अनादि निधन है। यह आत्मा का धर्म है, आत्मा को परमात्मा बनाने की कला और विज्ञान है। सभ्यता के आदि युग में जन्मे भगवान ऋषभदेव इस युग में जैन धर्म का प्रतिपादन करने वाले प्रथम तीर्थंकर थे तथा २४वें व अन्तिम तीर्थंकर थे भगवान महावीर जिनके द्वारा उपदिष्ट धर्म आज **जैन धर्म** कहलाता है।

समस्त प्राचीन जैन वाङ्मय में भगवान महावीर की जन्म-कल्याणक भूमि का विभिन्न ग्रन्थों में विदेह क्षेत्र के कुण्डग्रामपुर-कुण्डपुर ग्राम-कुण्डपुर-कुण्डलपुर के नाम से वर्णन किया गया है जिसके अधिपति उनके पिता राजा सिद्धार्थ थे। किन्तु विदेह देश की भौगोलिक स्थिति के विषय में प्राचीन जैन पुराण साहित्य में कोई उल्लेख नहीं मिलते। पर बौद्ध एवं जैनेतर अन्य साहित्य के अनुसार महावीर-बुद्ध युग में वर्तमान बिहार प्रदेश के गंगा नदी के उत्तर का क्षेत्र विदेह देश तथा दक्षिण का क्षेत्र मगध देश कहलाता था। आज के बिहार में एक तीसरा देश अंगदेश भी समाहित है जिसे चम्पा नदी विदेह देश और मगध देश से अलग करती थी।

जन्म-भूमि विवाद तीन स्थलों को लेकर है तथा प्रत्येक को सही जन्म कल्याणक की भूमि होने का दावा किया जाता है।

१- **नालन्दा जिलान्तर्गत कुण्डलपुर** - दिगम्बर जैन आम्नाय द्वारा भगवान् की जन्म-कल्याणक भूमि के रूप में यह बहुमान्य चला आ रहा है। गणिनी आर्यिका ज्ञानमती जी इसकी प्रबल समर्थक हैं तथा उन्होंने इसके समग्र विकास का संकल्प किया है। उन्होंने अपने पक्ष के विद्वानों की तथाकथित राष्ट्रीय संगोष्ठियां व महासम्मेलन भी आयोजित कराये हैं तथा उनके पक्ष के समर्थन में लिखे गये लेखों का व्यापक प्रचार भी कराया है। उन्होंने फरवरी २००३ ई. में यहां एक वृहद् पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भी सम्पन्न कराई है तथा कुछ नवीन भव्य निर्माण भी कराये हैं। इस क्षेत्र के भगवान् महावीर की सही जन्मभूमि के रूप में व्यापक प्रचार हेतु एक कुण्डलपुर-महावीर-देशना रथ का भी प्रवर्तन किया है जो पूरे देश में घूमेगा।

२- **लछवाड़-क्षत्रियकुण्ड** - श्वेताम्बर आम्नाय कुण्डलपुर क्षेत्र के उदय में आने से कुछ पहले से ही दक्षिण बिहार के ही मुंगेर जिलान्तर्गत लछवाड़-क्षत्रियकुण्ड को भगवान् के जन्म कल्याणक क्षेत्र के रूप में मानती आ रही है।

किन्तु ये दोनों स्थान महावीर कालीन मगध देश (गंगा नदी के दक्षिण का प्रदेश) में स्थित हैं तथा पौराणिक कथ्यों से इनकी भौगोलिक स्थिति का समर्थन नहीं होता।

३- **वैशाली-वासोकुण्ड** - महावीर-बुद्ध युग में भगवान् महावीर के अनन्य भक्त सम्राट श्रेणिक ने सम्पूर्ण मगध देश को जीत कर उस पर अपना एक-छत्र साम्राज्य स्थापित किया हुआ था, जब कि गंगा नदी के उत्तर के क्षेत्र (विदेह देश) में कई छोटे-बड़े गणराज्य थे।

इनमें सर्वाधिक विशाल शक्तिशाली और समृद्ध लिच्छवी क्षत्रिय गणराजाओं का वज्जिसंघ था तथा उसकी राजनगरी वैशाली अपनी व अपने गणराजाओं की समृद्धि

तथा प्रजातन्त्रात्मक सुशासन व्यवस्था के लिए दूर-दूर तक विख्यात थी। वज्जि संघ में सम्मिलित गणराजाओं के राज्य भी वैशाली के ही चारों ओर आस-पास थे तथा वैशाली उनके राज्यों की केन्द्र स्थल थी। ये गणराजा अपने में से ही किसी एक को सर्वसम्मति अथवा बहुमत से अपना गणाधिपति या महाराज सामान्यतया जीवन पर्यन्त अवधि के लिए चुनते थे। तत्कालीन गणाधिपति महाराज चेटक भगवान् महावीर के नाना या एक अनुश्रुति के अनुसार मामा थे। इन सभी गणराजाओं के पुत्र वैशाली के राजकुमार कहलाते थे और उन्हीं मे से कोई एक भावी गणाधिपति होता था। भगवान् महावीर के पिता सिद्धार्थ भी वज्जि संघ मे सम्मिलित एक गणराजा थे तथा उनकी कुण्डलपुर नगरी भी वैशाली के आस-पास थी। इसीलिए भगवान् महावीर को 'वैशाली का राजकुमार' और 'वैशालिक' भी कहा गया है। तत्कालीन अन्य प्रसिद्ध गणराज्य थे पावा व कुशीनारा में मल्लों के तथा कपिलवस्तु में शाक्यों का। ये सभी तत्कालीन मध्यदेश में स्थित थे।

पुरातत्वविदों एवं इतिहास-वेत्ताओं ने ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं साहित्यिक शोध-खोज से तथा भारतीय पुरातत्व एवं सर्वेक्षण विभाग द्वारा सन् १८८२ से १६१० तक कराए गए उत्खनन में उपलब्ध हुए साक्ष्यों के आधार पर वर्तमान बिहार प्रदेश मे गंगा नदी के उत्तर के क्षेत्र में वैशाली जिले के सरैया उपखण्ड के बसाढ़ ग्राम के निकट प्राचीन टीलों के नीचे दबे लिच्छवियों के वज्जिसंघ की राजनगरी वैशाली के पुरावशेष खोज निकाले हैं। वैशाली के गढ़ के पुरावशेषों से कुछ ही किलोमीटर की दूरी पर स्थित वासोकुण्ड नामक स्थल को उन्होंने भगवान महावीर की सही जन्म नगरी कुण्डग्राम चिन्हित किया है। राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानन्द मुनि जी, स्व. आचार्य श्री देश भूषण जी, चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्ति सागर जी के पट्टाचार्य श्री वर्द्धमान सागर जी, स्थानकवासी आम्नाय के प्रमुख आचार्य इतिहास-मनीषी स्व. श्री हस्तीमल जी, वीरायतन की प्रमुख आचार्या श्री चन्दना जी, श्वेताम्बर आचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि जी आदि प्रमुख संतों, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद, अधिकांश जैन एवं प्रायः सभी जैनेतर विद्वत्जनों ने तथा केन्द्र एवं बिहार प्रदेश की सरकारों ने भी शोध-खोज के आधार पर निश्चित किए गये इस स्थल को ही भगवान् महावीर स्वामी की सही जन्म कल्याणक भूमि के रूप में स्वीकार कर लिया है।

नालन्दा जिलान्तर्गत वर्तमान कुण्डलपुर क्षेत्र प्राचीन मगध साम्राज्य की राजधानी राजगृह से कुछ ही किलोमीटर की दूरी पर है तथा लछवाड़ भी प्राचीन मगध देश में ही है। मगध के एक-छत्र सम्राट श्रेणिक के होते हुए मगध में और उसकी राजधानी के समीप ही किसी स्वतन्त्र राज्य के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। राजा सिद्धार्थ श्रेणिक के अधीन कोई करद राजा या उनके सामन्त नहीं थे। नालन्दा जिलान्तर्गत कुण्डलपुर का पुराना नाम बड़ागांव ही है, कुण्डलपुर नहीं और यहां का प्राचीन मंदिर भी डेढ़ सौ वर्ष से अधिक पुराना नहीं है।

(३१-३-२००३ को लिखा गया)

(डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की 'भारतीय इतिहास : एक दृष्टि' और डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल की 'वैशाली के गणनायक महावीर' भी दृष्टव्य हैं। -सम्पादक)

समण सुत्तं

- डॉ. शशि कान्त

परिचय

जैन धर्म के अनुयायियों की पहचान के रूप में कोई एक सर्वमान्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था जिस प्रकार कि **श्रीभागवत् गीता** को सनातन धर्मी हिन्दुओं में, **धम्मपद** को बौद्ध धर्म के अनुयायियों में, **बाइबिल** को ईसाई धर्म के मानने वालों में, **कुरान शरीफ** को इस्लाम धर्मानुयायियों में और **गुरुग्रन्थ साहब** को सिख धर्मानुयायियों में एक सर्वमान्य धर्मग्रन्थ के रूप में मान्यता प्राप्त है। आचार्य विनोबा भावे की प्रेरणा से जैन धर्म के दोनों मुख्य सम्प्रदायों, दिगम्बर और श्वेताम्बर, के विविध धर्मग्रन्थों के आधार से एक सर्वमान्य जैनधर्म-सार के रूप में संकलन प्रस्तुत किये जाने की प्रस्तावना की गई थी। २९-३० नवम्बर, १९७४, को सम्पन्न सम्मेलन में इस संकलन को **समण सुत्तं** का नाम दिया गया। हिन्दी अनुवाद के साथ इसके तीन संस्करण (प्रथम संस्करण अप्रैल १९७५ में, द्वितीय संस्करण मई १९७५ में और तृतीय संस्करण १९८२ में) सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट, वाराणसी, से प्रकाशित हुये। अंग्रेजी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन सर्व सेवा संघ प्रकाशन द्वारा प्रथमतः ५ अप्रैल १९९३ को किया गया। पुनः, अंग्रेजी संस्करण का प्रकाशन १९९९ में भगवान महावीर मेमोरियल समिति, भगवान महावीर केन्द्र, बेनीटो ज्वारेज़ रोड, नई दिल्ली, द्वारा किया गया। उपरोक्त प्रकाशन से **समण सुत्तं** के प्रति अजैन विद्वानों की जिज्ञासा में अभिवृद्धि हुई। रामकृष्ण मिशन की प्रतिष्ठित पत्रिका **प्रबुद्ध भारत** के विद्वान सम्पादक ने मुझसे यह अपेक्षा की कि मैं उनकी पत्रिका के लिए उक्त प्रकाशन की समीक्षा कर दूँ। तदनुसार मेरे द्वारा की गई समीक्षा **Prabuddha Bharata** के फरवरी २००१ के अंक में पृष्ठ १४७-१४९ पर प्रकाशित है। उक्त समीक्षा नीचे दी जा रही है। इस समीक्षा में मेरे द्वारा यह अपेक्षा की गई थी कि जो गाथायें **समण सुत्तं** में सम्मिलित की गई हैं उनके स्रोत-रूप मूल-ग्रन्थ और उसकी गाथा संख्या का उल्लेख भी किया जाना प्रामाणिकता की दृष्टि से उचित होता।

तीर्थंकर वाणी के फरवरी २०११ के अंक में डॉ. सागरमल जैन का लेख Some Reflection on the Samana Suttam प्रकाशित हुआ है। डॉ. सागरमल जैन ने इस ग्रन्थ के सम्पादन के दायित्व का निर्वहन किया था। अपने उक्त लेख में उन्होंने मूल ग्रन्थों के नाम दिये हैं। उनके उक्त लेख को इसी अंक में प्रकाशित किया जा रहा है।

डॉ. प्रेम सुमन जैन ने **समण सुत्तं** से ४२ गाथाओं का संकलन **नित्य प्राकृत सामायिक** पाठ के रूप में किया है। उनकी भावना है कि सभी जैन धर्मानुयायी, सम्प्रदाय-पंथ-गुरु आदि का विभेद भूलकर, इनका प्रतिदिन पाठ करें, जो एक जैन धर्मानुयायी होने की पहचान के रूप में प्रचलित हो सके। यह पाठ भी इसी अंक में प्रकाशित किया जा रहा है।

समण सुत्तं का हिन्दी में पद्यानुवाद श्री प्रकाश चन्द जैन 'दास' द्वारा किया गया है और ज्योतिर्मुख भाग में संकलित १२ सूत्रों का पद्यानुवाद **शोधादर्श** के अंक १६-१७, १८, १६, २०, २३, २४, २५, २६ और २७ में प्रकाशित है।

समण सुत्तं के हिन्दी अनुवाद सहित, अंग्रेजी अनुवाद सहित तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद सहित जो संस्करण प्रकाशित हों, उनमें अनुक्रमणिका के अंतर्गत विभिन्न गाथाओं के मूल स्रोत को अवश्य इंगित किया जाये। हमारा निवेदन है कि अनुवादक और प्रकाशक कृपया इसका ध्यान रखेंगे।

समीक्षा

Prabuddha Bharata में प्रकाशित समीक्षा नीचे दी जा रही है :–

The idea

Just as Acharya Vinobaji brought out the essence of all the religions and their religious works such as *The Essence of Christianity, Nava Saṁhitā of Dhammapada*, etc. he wanted the *Jaina Dharmasāra* also to be published. There was a practical problem because it is a living religion and its two major sects, the Digambaras and the Śvetāmbaras, and also the sub-sects (Sthānakavāsī, Terāpanthī, Tāraṇapanthī), had doctrinal differences which were not easy to reconcile. Sri Jinendra Varniji, however, took up the challenge and presented a compilation from the relevant texts to an assembly of Jaina *āchāryas* and monks, scholars and laymen - representing all the Jaina sects - in Delhi on 29-30 November 1974. In that assembly it was given the name *Samaṇa Suttaṁ*, and its first edition with Hindi translation was published in April 1975, to coincide with the 2500th anniversary celebrations of Mahāvīra's *nirvāṇa* (reckoned from 15 October 527 B.C.). Shri Radha Krishna Bajaj of the Sarva Seva Sangha (the sponsor of the project under the inspiration of Sant Vinobaji) has rightly noted that "during the course of the last two thousand years, it was for the first time that an unanimous work was

published ....." Its translation into English could, however, only be published in 1993 (first edition) because extra care had to be taken in the translation to avoid contradictions.

The draft was sent to Vinobaji with the signatures of several great *munis* as well as the compiler. Vinobaji said: "There have been many events of satisfaction in my life. Perhaps, the best of the satisfactions, the final one, comes to me at last this year. I had often requested the Jainas that the essence of Jaina philosophy should be available in the same manner as that of the Vedic religion which was available in the *Gītā* in about 700 verses and that of Buddhism in the *Dhammapada*. This was a difficult task for the Jainas, as they have many traditions and many books....Finally...a book entitled *Samaṇa Suttaṁ*...took its shape. There are 756 verses. The figure 'seven' is very auspicious for the Jainas. If 7 and 108 are multiplied, the result is 756. So many verses were selected by unanimous consent..."

Śramaṇa Culture

Justice T.K. Tukol and Dr. K.K. Dixit, the translators, have succinctly put in their learned *Introduction* that Jainism follows the tradition of Śramaṇa culture, which believes in the existence of the soul but not of God as a creator of the universe. The soul has an eternal existence and is self-regulated; it reaches the highest position through independent progress, after attainment of supreme purification by destruction of attachment or indulgence and hatred, and acquisition of complete detachment. They also note that though history has not been able to trace the origin of the Jaina religion, the historical evidence now available and the result of dispassionate researches in literature have established that Jainism is undoubtedly an ancient religion; and also that Tīrthaṅkara Mahāvīra is not its founder but he merely reiterated and rejuvenated the religion preached by the preceding Tīrthaṅkaras, beginning with Ṛṣabhadeva and continuing through Pārśvanātha to Mahāvīra.

Bedrock of Jaina ethics

Ahiṁsā and *anekānta* form the bedrock of Jaina ethics. Commission of violence or non-violence (*ahiṁsā*) is dependent upon the mental condition of the doer, not on the act. If there is violence in one's mental state, the person would be ethically violent

even if no violence is actually committed. The realization that even the highest knowledge that can be acquired by an embodied soul in this vast world is limited, imperfect, and one-sided, and that the ego of the individual and the inadequacy of language or expression also create conflicts and disputes, one should possess an attitude of *anekānta* or looking at from many points of view. Fruitful result can be obtained when the practice of truth that is known and the knowledge of truth that is practised are combined together.

The most significant contribution of the Jaina philosophy is that every object or substance, whether it possesses consciousness or is immobile, behaves according to its own nature (*dharma*); and the existence eternal of six substances (*jīva, pudgala, dharma, adharma, ākāśa* and *kāla*), proves that this world is without a beginning and without an end. It laid stress on *karma* (action, conduct) as against *janma* (birth) for determining whether a person was a Brahmin or any other, and put a premium on the observance of the ethical code by asserting that tradition, apparel, money, strength, power, knowledge or books cannot protect a person from the effect of one's *karma.* The entire ethical discipline of Jainism is self-oriented, and a systematic and gradually progressive prescription of ethical codes capable of leading upwards is available.

The *Samaṇa Suttaṁ*

In the *Samaṇa Suttaṁ* are compiled in an orderly and concise manner, leaving out the controversial, the essential principles of Jaina religion and philosophy, in 756 verses drawn from the accepted textual lore in Prakrit which is said to have come down by tradition from the last Tīrthaṅkara, Lord Mahāvīra. It is divided into four parts : *jyotirmukha* or the source of illumination; *mokṣa-mārga* or the path of liberation; *tattva-darśana* or metaphysics, and *syādvāda* or the theory of relativity. The first part contains 191 verses under 15 heads and includes precepts on transmigratory cycle, *karma*, religion, self-restraint, non-possessiveness, non-violence, and soul, *inter alia.* The second part is the longest, with 396 verses under 18 heads : *mokṣa* or liberation from the cycle of birth and death is the ultimate aim to be attained, and this part, therefore, contains the precepts on different aspects of spiritual

discipline. The third part has only 72 verses under 3 heads, dealing with the fundamentals, the substances and the universe. The fourth part concludes with 97 verses under 8 heads, dealing with the categories of knowledge; under the conclusion head, it has been stated (v. 745) : 'Thus preached the *Vaiśālika* Bhagavān Mahāvīra, of the *Jñāta* clan, endowed with supreme knowledge and supreme vision. This is what I speak about', to bear the authenticity of all that has been compiled in this compendium and to endow it with the sanctity of a scriptural text; and the text closes with a 7-verse hymn dedicated to Mahāvīra. At the end is the alphabetic index of the verses. The verses are given in the Nāgarī script with transliteration in Roman below and translation into English in chaste prose on the opposite page.

The ***Samaṇa Suttaṁ*** is a commendable work for making the principles and precepts of Jainism available in a nutshell to the English-knowing people. Technical terminology is not always easy to be rendered into English because it has a Semitic philosophic base, and that difficulty is also experienced with translating the works pertaining to other Indian philosophical systems. For instance, the concept of *Ātman* is foreign to the westerner, and 'soul' does not convey the whole sense. It would have been useful if the original sources of the compiled verses were also indicated in an appendix. Of the signatories to the original text, Muni Vidyanandji is fortunately still with us and a request can be addressed to him about this. All the same, the compiler and the counseling teachers, translators and publishers deserve commendation for bringing out this book and making available the essence of Jainism in a succinct form to the inquisitive, as was intended by Vinobaji.

(It is not understood as to why the name has been wrongly spelt as ***Samaṇ Suttaṁ***, instead of ***Samaṇa Suttaṁ***, on the title page in both the English editions, one published by the Sarva Seva Sangh Prakashan in 1993 and the other by the Bhagwan Mahavir Memorial Samiti in 1999. However, inside it is correctly spelt as ***Samaṇa Suttaṁ***. It would be appropriate if care is taken in future edition to correctly spell ***Sammaṇa Suttaṁ*** on the title page as well as inside.)

****

Some Reflection on the Samana Suttam

- Dr. Sagarmal Jain

Except the religions of indian origin each and every religion of the world posseses a Divine Book,which prescribes the religious duties and moral code for their followers. It does not mean that the religions of Indian origin do not possess their own religious books, only problem is that among the Semitic religions, each and every religion has one and the only one book which is considered as divine and authentic while the religions of Indian origin possess many books and they consider all of them as divine and authentic. But among the religions of Indian origin in due course of time Hinduism accepted **Gita** as their authentic and divine book.Similarly, the Buddhist accepted **Dhammapada** as their authentic religious book. But there was a problem with Jainas because of their different sects; though the Svetambaras are accepting the **Uttaradhyayana** as their authentic religious book but the Digambaras do not accept it as an authentic book. Thus there is no one authentic book of Jainas which is acceptable to all the Jaina sects and which can present all the aspects of Jainism in nutshell. Though in Svetambara tradition Muni Chauthamalji has prepared a book **Nirgrantha Pravachan** on the line of **Bhagawat Gita**, which contains eighteen chapters just like **Gita**. One other book was also prepared in the name of **Mahavira Gita** by Acharya Shree Buddhisagaraji. Similarly, Pt.Bechardasji compiled a book in the name of **Mahavira Vani** and some other scholars also made their effort in this direction,but all their works were not acceptable to Digambara sect.

So, in this situation Vinobaji suggested to Jinendra Varniji for the compilation of a work which is based on the texts of both the sects and covers all important aspects of Jaina religion. After the sugggestion of Vinobaji, Jinendra Varniji prepared a book in the name of **Jaina Dharmasara**. The book was circulated to the all important Jain scholars and Jains saints, but it was not acceptable to all of them. Various suggestions came and according to them the work was recompiled. Some prominent Jaina Acharyas and Munis along with some scholars assembled at Delhi and they finalized the work. They gave it the name - "**Samana Suttam**". In it 756 Prakrita gathas have been compiled from the works of both the sects, taking 378 from the works of each sect. Though it was accepted by all the sects, but till date no one sect has given proper support to it.

Though Vinobaji was not agreeable to give the original names of the source books but I tried to sort out the original sources of the gathas with the help of Shri Jamnalalji Jain and checked them with the original

text . On that basis **Samana Suttam** possess 752 gathas from the following texts -

Avasyakaniryukti - 6, Avasyakasutra -7, Acaranga -10, Aturapratyakhyana - 8, Anuyogadvara -1, Aradhanasara -1, Bhagavatisutra -1, Bhavapahuda -8, Bhagavati Aradhana -25, Brahadkalpa-bhasya -22, Bhaktaparijna -10, Barassa Anuvekkha -8, Caityavandana bhasya -2, Dravyasamgraha -6, Dravyasamgrahatika -1, Darsanapahuda -5, Dasavaikalika - 36, Dasa bhakti -1, Dhyana sataka -10, Dasa srutaskandha -1, Gommatasara -35, Guru vandanabhasya -1, Isibhasiyaim -3, Jayadhavala - 3, Kartikeyanupreksa -25, Laghusrutabhakti -1, Laghunayacakra -12, Mulacara - 35, Maranasamadhi - 30, Mokkhapahuda -11, Mahapratyakhyana - 4, Niyamasara - 39, Nandisutra - 4, Nayacakra-30, Nisithabhasya-1, Navatattva Prakarana -1, Oghaniryukti - 4, Pancapratikramansutra -1, Pancastikaya - 24, Pravacanasara - 28, Pamcasamgraha - 6, Pindaniryukti - 3, Pravacanasaroddhara -1, Pancasaka (Haribhadra) - 4, Pasanaha Cariyam - 3, Rayanasara - 9, Satkhandagama - 1, Samayasara - 31, Sanmatitarka - 21, Savayapannati - 14, Sutrakrtanga - 20, Thussamidandaka - 3, Tiloyapannati-12, Trilokasara - 2, Uttaradhyayansutra -115, Upadesamala - 11, Uttaradhyayananiryukta -1, Upasakadasang -1, Vyavahara Bhasya -1, Visesavasyakabhasya - 28 and Vasunandi Sravakacara - 9.

We could not, however, trace the source of the remaining 4 Gathas.

Thus compiled text covers all aspects of Jaina religion and philosophy in the following chapters -

1- Precepts on the Auspicious. 2- Precepts on the Jina's teachings
3- Precepts on the Religious Order
4- Precepts on the Scriptural Exposition
5- Precepts on the Transmigratory Cycle
6- Precepts on the Karmas
7- Precepts on the Wrong Faith
8- Precepts on the Renunciation of Attachment.
9- Precepts on the Religion
10- Precepts on the Self-restraint
11- Precepts on the Non-possessiveness
12- Precepts on the Non-violence
13- Precepts on the Vigilance
14- Precepts on the Education
15- Precepts on the Soul
16- Precepts on the Path of Liberation
17- Precepts on Three Jewels
18- Precepts on Right Faith
19- Precepts on Right Knowledge
20- Precepts on Right Conduct
21- Precepts on Spiritual Realization

22- Precepts on the Two Paths of Religion
23- Precepts on Householder's Religion
24- Precepts on Religion of Monks
25- Precepts on Vows
26- Precepts on Carefulness and Self-Control
27- Precepts on Obligatory Duties
28- Precepts on Penance
29- Precepts on Meditation
30- Precepts on Reflection
31- Precepts on Soul-colouring
32- Precepts on Spiritual Progress
33- Precepts on Passionless Death
34- Precepts on Fundamental
35- Precepts on Substance
36- Precepts on Universe
37- Precepts on Non-absolutism
38- Precepts on Valid Knowledge
39- Precepts on View-point
40- Precepts on theory of Relativity and Seven Predications
41- Precepts on Reconciliation or Synthesis
42- Precepts on Installation
43- Conclusion
44- Hymn To Mahavira

Thus it contains Jain religious preachings along with its Metaphysics, Ethics and Epistemology. So far as its Transtation is concerned, first of all Pt. Bechardasji translated its Prakrit gathas into Sanskrit. After that its Hindi, English, Gujrati and Marathi translation came into existence. First of all, Hindi translation was done by Pt. Kailash Chandra Ji. After that Gujrati and Marathi translations were done.

So far as its English translation is concerned, first of all Dr. K. K. Dixit translated it into English. He was entrusted with the task on the advice of Pt. Dalsukhbhai Malvania. Mr. Justice T. K. Tukol also translated it, on the suggestion of Honorable Vice-President of India Shri B. D. Jatti. Both the drafts were handed over to me in accordance with the recommendation of Late Chamanabhai Chakubhai Shah. On the basis of both the drafts I corrected the translation and prepared final draft, which was published by Sarva Seva Sangha.

- Director, Prachya Shodha Sansthan,
Dupada Road, Shajapur

(Adapted from तीर्थंकर वाणी, Year 18, No. 5, Feb. 2011, with compliments - Editor)

जैन की पहचान

नित्य प्राकृत सामायिक पाठ

- प्रो. डॉ. प्रेम सुमन जैन

वर्तमान में पूरे विश्व में जैन धर्म को मानने वाले अनेक परिवार निवास करते हैं। वे प्रतिदिन जैन धर्म से सम्बंधित कोई-न-कोई प्रार्थना, पूजा , स्तुति, प्रतिक्रमण, सामायिक, गुरुवन्दना आदि के रुप में हिन्दी, गुजराती, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी आदि भाषाओं में पाठ करते है। परन्तु उनके प्रतिदिन के पाठों में न तो एकरूपता है और ना ही उन पाठों की भाषाओं और विषयवस्तु में एकरूपता है। अतः उनके द्वारा किया जाने वाला नित्यपाठ उनकी कोई पहचान नहीं बना पाता है और इस तरह जैन धर्म के अनुयायियों की अन्य लोगों के समक्ष कोई पहचान नहीं बन पाती। प्रतिदिन गिरजाघर में जाने वाले ईसाई भाईयों की पहचान है कि वे प्रति रविवार को गिरजाघर जायेंगे और **बाइबिल** का पाठ करेंगे, प्रत्येक सिख भाई **गुरुग्रंथसाहब** का पाठ करेगा, और प्रत्येक मुसलमान भाई निश्चित समय पर प्रतिदिन नमाज पढ़ेगा। इसी तरह अन्य धर्मों को मानने वालों की भी कोई-न-कोई पहचान है।

इस बहुमत के युग में एक प्रयत्न ऐसा होना चाहिये कि जैनधर्म को मानने वालों और प्राकृत को अपने धर्म ग्रन्थों की भाषा जानने वालों की संख्या सप्रमाण लोगों के समक्ष आये। इसके लिए सम्पूर्ण जैन समाज को एकता के सूत्र में बांधना अभी दूर की बात है, क्योंकि जैनधर्म में विभिन्न सम्प्रदाय हैं, विभिन्न धर्मगुरु हैं, सब की अपनी-अपनी मान्यताएँ हैं, सब की अपनी-अपनी पूजा पद्धत्तियाँ हैं। किन्तु इस विभिन्नता के वातावरण में भी एकता की एक किरण दिखाई पड़ रही है, और वह है - चौबीस तीर्थंकरों की मान्यता में एकता, णमोकार-मंत्र के उच्चारण में एकता, अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त, रत्नत्रय जैसे सिद्धांतों को मानने में एकता और सामायिक पाठ के पूजा पद्धति में सम्मिलित होने की एकता - ये सभी बिन्दु इसलिए भी एक हो सकते हैं क्योंकि इनका विवरण प्राकृत भाषा में उपलब्ध है।

जैनधर्म की इस एकता को और अधिक बल मिलता है, पूज्य विनोबा भावे की सत्प्रेरणा से सभी जैन सम्प्रदायों, जैन मुनियों और जैन विद्वानों के द्वारा १९७४ में सर्वमान्य **समण सुत्तं** नामक ग्रंथ के निर्माण की एकता में। **समण** सुत्तं ग्रंथ जैनों के दोनों सम्प्रदायों (दिगाम्बर व श्वेताम्बर) के मुख्य ग्रंथों से चयनित प्राकृत गाथाओं

का संग्रह ग्रंथ है और इसमें जैनधर्म के सभी सिद्धांतों का विवेचन समाहित है। यदि इस **समण सुत्तं** ग्रंथ का सभी जैन अपने घरों में भक्ति पूर्वक स्वाध्याय करें तो जैनधर्म के परिवारों की स्पष्ट पहचान बन सकती है।

जैन धर्म के मानने वालों की यह पहचान और अधिक गहरी हो सकती है यदि इस सर्वमान्य ग्रंथ **समण सुत्तं** की गाथाओं में से लगभग ४२ गाथाओं को नित्य सामायिक पाठ के रूप में प्रत्येक जैन प्रतिदिन मात्र १५ मिनट का समय देकर उनका पाठ करे।

इस नित्य प्राकृत सामायिक पाठ की ४२ गाथाओं को यहाँ पर हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। इन प्राकृत गाथाओं का पाठ और हिन्दी अनुवाद **समण सुत्तं** ग्रंथ से ही लिया गया है, ताकि प्रामाणिकता बनी रहे। इन गाथाओं का अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, कन्नड़ आदि भाषाओं में अनुवाद भी उपलब्ध किया जा सकता है, क्योंकि इन भाषाओं में **समण सुत्तं** ग्रंथ के संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इन भाषाओं के विद्वानों का इस कार्य में सहयोग लिया जा सकता है।

इस **नित्य प्राकृत सामायिक पाठ** की ४२ गाथाओं में १. णमोकार मंत्र, २. पंचपरमेष्ठि चतुःशरण, ३. तीर्थंकरों के नाम, ४. धर्म का स्वरूप, ५. अहिंसा, ६. ज्ञान, ७. अपरिग्रह, ८. अनेकान्त का स्वरूप, ९. दान, पूजा और विनय आदि का स्वरूप, सम्मिलित हैं। इन गाथाओं का यदि प्रतिदिन पाठ किया जाय तो परिवार के प्रत्येक सदस्य को ये गाथाएं अधिकतम एक माह में कंठस्थ याद हो जायेंगी, फिर इनके उच्चारण और पाठ करने में कठिनाई नहीं होगी। प्राकृत में पाठ करने से प्रतिदिन प्राकृत भाषा का उच्चारण करने वालों की संख्या में वृद्धि होगी और जिनशासन की मूल भाषा प्राकृत की इससे सुरक्षा होगी।

इस **नित्य प्राकृत सामायिक पाठ** का जब प्रत्येक जैन परिवार को उच्चारण करना है तो यदि उसका समय भी निश्चित हो तो इसकी उपयोगिता और अधिक बढ़ेगी। यद्यपि जैन परिवार में सामायिक ४८ मिनट करने का विधान है, तथापि आज के इस युग में परिस्थितियों और प्रचार को ध्यान में रखते हुये, यह नित्य प्राकृत सामायिक पाठ १५ मिनट में किया जा सकता है। इस प्रकार जैन परिवार प्रतिदिन प्रातः ८.०० बजे तीर्थंकर की वाणी प्राकृत भाषा की गूंज (ध्वनि) सारे विश्व में प्रसारित कर सकते हैं। २४ घंटों में से १५ मिनट का समय निकालना प्रत्येक जैन साधु, साध्वी, व्रती, त्यागी, श्रावक-श्राविका, छात्र-छात्रा के लिए असंभव नहीं है।

प्रातःकाल के इस समय के बाद हर व्यक्ति अपने अन्य दैनिक कार्यों में लग सकता है। सुविधानुसार इस प्राकृत पाठ को प्रत्येक परिवार में शाम को ७.०० बजे आरती के समय भी किया जा सकता है। यह १५ मिनट का समय निर्धारित ४८ मिनट के समय को कम करने का प्रस्ताव नहीं है, जो भक्त ४८ मिनट मिलकर सामायिक करते हैं वे उसे यथावत् जारी रख सकते हैं। इस १५ मिनट के **नित्य प्राकृत सामायिक पाठ** के साथ सुविधानुसार लोग अपनी परम्परागत प्रार्थना स्तुति आदि को भी जोड़ सकते हैं।

इस **नित्य प्राकृत सामायिक पाठ** को अच्छे गायक द्वारा कैसेट के रूप में भी प्रसारित किया जा सकता है। यह कैसेट प्रत्येक घर में, प्रत्येक छात्रावास में, प्रत्येक वाहन में, समारोह में बजाया जा सकता है। कैसेट-सी०डी० के प्रयोग से इस **नित्य प्राकृत सामायिक पाठ** को लोग **गायत्री मंत्र** की तरह और अधिक याद रख सकेंगे। इसे सुनते ही पता चलेगा कि यह प्राकृत भाषा में जैनों की प्रार्थना है।

इस **नित्य प्राकृत सामायिक पाठ** को स्टीकर के रूप में भी छपाकर विभिन्न स्थानों पर प्रेषित किया जा सकता है, ताकि प्रत्येक जैन को मूलपाठ एवं अनुवाद उपलब्ध हो सके। इस पाठ की गाथाओं की व्याख्या करने के लिए वर्कशाप, संगोष्ठी, व्याख्यान आदि भी जैन समाज में कराये जा सकते हैं।

प्रत्येक जैन की पहचान और प्राकृत भाषा के अधिक से अधिक प्रचार-प्रसार की दृष्टि से **नित्य प्राकृत सामायिक पाठ** का यह एक विनम्र प्रस्ताव (प्रयास) है। इस सम्बन्ध में पूज्य साधक जनों, विद्वानों, श्रावकों आदि के सुझाव सदैव आमन्त्रित हैं। हर व्यक्ति अपने स्तर पर इस **नित्य प्राकृत समायिक पाठ** के प्रचार-प्रसार को गति दे सकता है। मूलपाठ एवं अनुवाद नीचे दिया जा रहा है।

प्राकृत गाथायें तदनुसार १ से ४२ अंकित हैं, **समण सुत्तं** की गाथा सं. कोष्ठक में है, और हिन्दी अर्थानुवाद उसके नीचे दिया गया है।

१. **णमो अरहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आयरियाणं।**
णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं।। (१)
अरहंतों को नमस्कार। सिद्धों को नमस्कार।
आचार्यों को नमस्कार। उपाध्यायों को नमस्कार।
लोकवर्ती सर्व साधुओं को नमस्कार।

२. **एसो पंचणमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।**
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।। (२)

यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का विनाश करने वाला है और समस्त मंगलों में प्रथम मंगल है।

३. **अरहंता मंगलं। सिद्धा मंगलं। साहू मंगलं।**
केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।। (३)
अरहंत मंगल हैं।
सिद्ध मंगल हैं।
साधु मंगल हैं।
केवलि-प्रणीत धर्म मंगल हैं।

४. **अरहंता लोगुत्तमा। सिद्धा लोगुत्तमा। साहू लोगुत्तमा।**
केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।। (४)
अरहंत लोकोत्तम है।
सिद्ध लोकोत्तम है।
साधु लोकोत्तम है।
केवलि-प्रणीत धर्म लोकोत्तम है।

५. **अरहंते सरणं पव्वज्जामि। सिद्धे सरणं पव्वज्जामि।**
साहू सरणं पव्वज्जामि।
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।। (५)
अरहंतों की शरण लेता हूँ।
सिद्धों की शरण लेता हूँ।
साधुओं की शरण लेता हूँ।
केवलि-प्रणीत धर्म की शरण लेता हूँ।

६. **अरिहंता, असरीरा, आयरिया, उवज्झाय मुणिणो।**
पंचक्खरनिप्पण्णो, ओंकारो पंच परमिट्ठी।। (१२)

अर्हत्, अशरीरी (सिद्ध), आचार्य, उपाध्याय तथा मुनि - इन पाँचों के प्रथम पाँच अक्षरों (अ+अ+आ+उ+म) को मिलाकर ऊँ (ओम्) कार बनता है, जो पंच-परमेष्ठि का वाचक है - बीजरूप है।

७. **उसहमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।**
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे।। (१३)

मैं १. ऋषभ, २. अजित, ३. सम्भव, ४. अभिनंदन, ५. सुमति, ६. पद्मप्रभ, ७. सुपार्श्व, तथा ८. चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र को वन्दन करता हूँ।

८. सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयल सेयंस वासुपुज्जं च।
विमलमणंत-भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि।। (१४)

मैं ६. सुविधि (पुष्पदन्त), १०. शीतल, ११. श्रेयांस, १२. वासुपूज्य, १३. विमल, १४. अनन्त, १५. धर्म, तथा १६. शांति भगवान् को वन्दन करता हूँ।

६. कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च।। (१५)

मैं १७. कुन्थु, १८. अर, १६. मल्लि, २०. मुनिसुव्रत, २१. नमि, २२. अरिष्टनेमि (नेमि), २३. पार्श्व तथा २४. वर्धमान महावीर जिनवरों को वन्दन करता हूँ।

१०. चंदेहि णिम्मलयरा, आइच्चेहिं अहियं पयासंता।
सायरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।। (१६)

चन्द्र से अधिक निर्मल, सूर्य से अधिक प्रकाश करने वाले, सागर की भाँति गम्भीर सिद्ध भगवान् मुझे सिद्धि (मुक्ति) प्रदान करें।

११. अरहंतभासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोदहिं सिरसा।। (१६)

जो अर्हत् के द्वारा अर्थरूप में उपदिष्ट है तथा गणधरों के द्वारा सूत्ररूप में सम्यक् गुंफित है, उस श्रुतज्ञानरूपी महासिन्धु को मैं भक्तिपूर्वक सिर नवाकर प्रणाम करता हूँ।

१२. धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।। (८२)

धर्म उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा, संयम और तप उसके लक्षण हैं। जिसका मन सदा धर्म में रमा रहता है, उसे देव भी नमस्कार करते हैं।

१३. धम्मो वत्थुसहावो, खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो।। (८३)

वस्तु का स्वभाव धर्म है। क्षमा आदि भावों की अपेक्षा से वह दस प्रकार का है। रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र) धर्म है तथा जीवों की रक्षा करना धर्म है।।

१४. खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केण वि।। (८६)

मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ। सब जीव मुझे क्षमा करें। मेरा सब प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव है। मेरा किसी से वैर नहीं है।

१५. **जो चिंतेइ ण वंकं, ण कुणदि वंकं ण जंपदे वंकं।**
ण ये गोवदि णियदोसं, अज्जव-धम्मो हवे तस्स।। (६१)

जो कुटिल विचार नहीं करता, कुटिल कार्य नहीं करता, कुटिल वचन नहीं बोलता और अपने दोषों को नहीं छिपाता, उसके आर्जव (सरल) धर्म होता है।

१६. **अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।**
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ।। (१२३)

आत्मा ही सुख-दुःख का कर्ता है और विकर्ता (भोक्ता) है। सत्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना शत्रु है।

१७. **वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।**
माऽहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं वहेहि य।। (१२८)

उचित यही है कि मैं स्वयं ही संयम और तप के द्वारा अपने पर विजय प्राप्त करूँ। बन्धन और वध के द्वारा दूसरों से मैं दमित (प्रताड़ित) किया जाऊँ, यह ठीक नहीं है।

१८. **णाणी कम्मस्स खयत्थ-मुट्ठिदो णोट्ठिदो य हिंसाए।**
अददि असढं अहिंसत्थं, अप्पमत्तो अवधगो सो।। (१५६)

ज्ञानी-कर्म-क्षय के लिए उद्यत हुआ है, हिंसा के लिए नहीं। वह निश्चल भाव से अहिंसा के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह अप्रमत्त मुनि अहिंसक होता है।

१९. **जे ममाइयं मतिं जहाति, से जहाति ममाइयं।**
से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स नत्थि ममाइयं।। (१४२)

जो परिग्रह की बुद्धि का त्याग करता है, वही परिग्रह का त्याग कर सकता है। जिसके पास परिग्रह नहीं है, उसी मुनि ने पथ को देखा है।।

२०. **तुंगं न मंदराओ, आगासाओ विसालयं नत्थि।**
जह तह जयंमि जाणसु, धम्ममहिंसासमं नत्थि।। (१५८)

जैसे जगत् में मेरू पर्वत से ऊँचा और आकाश से विशाल अन्य कुछ नहीं है, वैसे ही अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है।

२१. **जह दीवा दीवसयं, पइप्पए सो य दिप्पए दीवो।**
दीवसमा आयरिया, दिप्पंति परं च दीवेंति।। (१७६)

जैसे एक दीप से सैकड़ों दीप जल उठते हैं और वह स्वयं भी दीप्त रहता है, वैसे ही आचार्य दीपक के समान होते हैं। वे स्वयं प्रकाशवान् रहते हैं, और दूसरों को भी प्रकाशित करते हैं।

२२. जह सलिलेण ण लिप्पइ, कमलिणिपत्तं सहावपयडीए।
तह भावेण ण लिप्पइ, कसायविसएहिं सप्पुरिसो।। (२२७)

जैसे कमलिनी का पत्ता स्वभाव से ही जल से लिप्त नहीं होता, वैसे ही सत्पुरुष सम्यक्त्व के प्रभाव से कषाय और विषयों से लिप्त नहीं होता।

२३. सूई जहा ससुत्ता, न रस्सई कयवरम्मि पडिआ वि।
जीवो वि तह ससुत्तो, न नस्सइ गओ वि संसारे।। (२४८)

जैसे धागा पिरोयी हुई सुई कचरे में गिर जोने पर भी खोती नहीं है, वैसे ही सूत्र सहित अर्थात् शास्त्रज्ञानयुक्त जीव संसार में पड़कर भी नष्ट नहीं होता।

२४. जेण रागा विरज्जेज्ज, जेण सेएसु रज्जदि।
जेण मित्ती पभावेज्ज, तं णाणं जिणसासणे।। (२५३)

जिससे जीव राग से विमुख होता है, श्रेय में अनुरक्त होता है और जिससे मैत्रीभाव प्रभावित होता (बढ़ता) है, उसी को जिनशासन में ज्ञान कहा गया है।

२५. सुद्धस्य य सामण्णं, भणियं सुद्धस्स दंसणं णाणं।
सुद्धस्स य णिव्वाणं, सो च्चिय सिद्धो णमो तस्स।।(२७७)

(ऐसे) शुद्धोपयोग (मुनि) के ही श्रामण्य कहा गया है। उसी के दर्शन और ज्ञान कहा गया है। उसी को निर्वाण होता है। वही सिद्धपद प्राप्त करता है। उसे मैं नमन करता हूँ।

२६. दाणं पूया मुक्खं, सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं, जइधम्मे तं विणा तहा सो वि।। (२९७)

श्रावक-धर्म में दान और पूजा मुख्य हैं, जिनके बिना श्रावक नहीं होता तथा श्रमण-धर्म में ध्यान व अध्ययन मुख्य हैं, जिनके बिना श्रमण नहीं होता।

२७. जं कीरइ परिरक्खा, णिच्चं मरण-भयभीरु-जीवाणं।
तं जाणं अभयदाणं, सिहामणिं सव्वदाणाणं।। (३३५)

मृत्यु के भय से भयभीत जीवों की जो रक्षा की जाती है, उसे ही अभय-दान जानो। यह अभय-दान सब दानों का शिरोमणि है।

२८. अहिंसा सच्चं च अतेणगं च, तत्तो य बंभं अपरिग्गहं च।
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि, चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विऊ।।(३६४)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच महाव्रतों को स्वीकार करके विद्वान् मुनि जिनोपदिष्ट धर्म का आचरण करे।

२९. जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भसंतो, पावं कम्मं न बंधइ।। (३९५)

यतनाचार (विवेक या उपयोग) पूर्वक चलने, यतनाचारपूर्वक रहने, यतनाचार पूर्वक बैठने, यतनाचारपूर्वक सोने, यतनाचारपूर्वक खाने और यतनाचारपूर्वक बोलने से अप्रमत्त जीव को पाप-कर्म का बंध नहीं होता।

३०. **जं किंचि मे दुच्चरितं, सव्वं तिविहेण वोसिरे।**
सामाइयं तु तिविहं, करेमि सव्वं णिरायारं।। (४३८)

(साधक ऐसा भी विचार करता है कि) जो कुछ भी मेरा दुश्चरित्र है, उस सबको मैं मन-वचन-कायपूर्वक तजता हूँ और निर्विकल्प होकर, त्रिविध सामायिक करता हूँ।

३१. **जत्थ कसायाणिरोहो, बंभं जिणपूयणं अणसणं च।**
सो सव्वो चेव तवो, विसेसओ मुद्धलोयंमि।। (४३९)

जहाँ कषायों का निरोध, ब्रह्मचर्य का पालन, जिनपूजन तथा अनशन (आत्मलाभ के लिए) किया जाता है, वह सब तप है। विशेषकर मुग्ध अर्थात् भक्तजन यही तप करते हैं।

३२. **विणओ मोक्खद्दारं, विणयादो संजमो तवो णाणं।**
विणएणाराहिज्जदि, आइरिओ सव्वसंघो य।। (४७०)

विनय मोक्ष का द्वार है। विनय से संयम, तप तथा ज्ञान प्राप्त होता है। विनय से आचार्य तथा सर्वसंघ की आराधना होती है।

३३. **पूयादिसु णिरवेक्खो, जिण-सत्थं जो पढेइ भत्तीए।**
कम्ममल-सोहणट्ठं, सुयलाहो सुहयरो तस्स।। (४७६)

आदर-सत्कार की अपेक्षा से रहित होकर जो कर्मरूपी मल को धोने के लिए भक्तिपूर्वक जिनशास्त्रों को पढ़ता है, उसका श्रुतलाभ स्व-पर सुखकारी होता है।

३४. **णाणेण ज्झाणसिज्झी, झाणादो सव्वकम्मणिज्जरणं।**
णिज्जरणफलं मोक्खं, णाणब्मासं तदो कुज्जा।। (४७८)

ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है। ध्यान से सब कर्मों की निर्जरा होती है। निर्जरा का फल मोक्ष है। अतः सतत् ज्ञानाभ्यास करना चाहिए।

३५. **सीसं जहा सरीरस्स, जहा मूलं दुमस्स य।**
सव्वस्स साधुधम्मस्स, तहा झाणं विधीयते।। (४८४)

जैसे मनुष्य के शरीर में सिर और वृक्ष में उसकी जड़ उत्कृष्ट या मुख्य है, वैसे ही साधु के समस्त धर्मों का मूल ध्यान है।

३६. **एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसणसंजुओ।**
सेसा मे बहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।। (५१६)

ज्ञान और दर्शन से संयुक्त मेरी एक आत्मा ही शाश्वत है। शेष सब अर्थात् देह

तथा रागादि भाव तो संयोग लक्षण वाले हैं - उनके साथ मेरा संयोग सम्बन्ध मात्र है। वे मुझसे अन्य ही हैं।।

३७. **सरीरमाहु नावत्ति,जीवो वुच्चइ नाविओ।**
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरंति महेसिणो। (५६७)

शरीर को नाव कहा गया है और जीव को नाविक। यह संसार समुद्र है, जिसे महर्षिजन तैर जाते हैं।

३८. **धीरेण वि मरियव्वं, काउरिसेण वि अवस्समरियव्वं।**
तम्हा अवस्समरणे, वरं खु धीरत्तणे मरिउं।। (५६८)

निश्चय ही धैर्यवान् को भी मरना है और कायर व्यक्ति को भी मरना है। जब मरण अवश्यम्भावी है, तो फिर धीरतापूर्वक मरना ही उत्तम है।

३९. **जेण विणा लोगस्स वि, ववहारो सव्वहा न निव्वहइ।**
तस्स भुवणेक्कगुरुणो, णमो अणेगंतवायस्स।। (६६०)

जिसके बिना लोक का व्यवहार बिल्कुल नहीं चल सकता, विश्व के उस एकमात्र गुरु अनेकान्तवाद को प्रणाम करता हूँ।।

४०. **णाणाजीवा णाणाकम्मं, णाणाविहं हवे लद्धी।**
तम्हा वयणविवादं, सगपरसमएहिं वज्जिज्जा।। (७३५)

इस संसार में नाना प्रकार के जीव हैं, नाना प्रकार की लब्धियाँ हैं, इसलिए कोई स्वधर्मी हो या परधर्मी, किसी के भी साथ वचन-विवाद करना उचित नहीं।

४१. **दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं, सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति।**
तवेसु वा उत्तम बंभचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते।। (७५४)

जैसे दानों में अभयदान श्रेष्ठ है, सत्यवचनों में अनद्य वचन (पर-पीड़ाजनक नहीं) श्रेष्ठ है और जैसे सभी सत्यतपों में ब्रह्मचर्य उत्तम है, वैसे ही ज्ञातृपुत्र श्रमण लोक में उत्तम हैं।

४२. **जयइ सुयाणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ।**
जयइ गुरू लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो।।७५६।।

द्वादशांगरूप श्रुतज्ञान के उत्पत्तिस्थान जयवन्त हों। तीर्थंकरों में अन्तिम जयवन्त हों। लोकों के गुरु जयवन्त हों। महात्मा महावीर जयवन्त हों।

- २९, विद्या विहार कालोनी,
उत्तरी सुन्दरवास, उदयपुर-३१३००१

ईश्वर, विज्ञान और भारतीय जैन मान्यता

- वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन "पांड्या"

प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. स्टीफेन हाकिंग ने अपनी नवीनतम् पुस्तक The Grand Design में बतलाया है कि इस ब्रह्माण्ड की रचना किसी ईश्वर ने नहीं की। भौतिक विज्ञान के गुरुत्त्वाकर्षण के अपरिहार्य नियमों के कारण अपने आप ऐसा होता रहता है। शून्य (सूक्ष्म परमाणुविक कणों) से हमारे ब्रह्माण्ड की रचना हुई है। इन परमाणुविक कणों के आपस में टकराने से Black Hole बन जाता है जो किसी और समय व स्थान में जाने के लिए प्रवेश द्वार का काम करता है। परमाणुओं के आपस में टकराने, आपस में प्रवेश करने और पृथक होने की क्रिया अनवरत चलती रहती है और ब्रह्माण्ड बनता-बिगड़ता रहता है।

वर्तमान समय में विज्ञान के क्षेत्र में विदेशी वैज्ञानिक जैसा भी और जो भी प्रकट कर देते हैं, हम उसी पर विश्वास कर उसके द्वारा अन्वेषण होना मान लेते हैं, चाहे युग-युगों से भारतीय जनता और भारतीय धर्म-दर्शन उसे मानता आ रहा हो। इस सम्बन्ध में देखा जावे तो प्राचीन भारतीय जैन मुनियों और ऋषियों को इस बात का पूर्ण ज्ञान था और भारतीय जैन दर्शन की मान्यता सही है। इसीलिए जैसे भौतिक-विज्ञान को निरीश्वरवादी कहा जाता है, वैसे ही जैन दर्शन को निरीश्वरवादी कहा जाता है। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान वेत्ता आधुनिक उपकरणों और यंत्रों के माध्यम से प्रयोग करके उनके निष्कर्षों से सही निष्कर्ष निकाल कर तथ्य सामने लाते हैं, वैसे ही प्राचीन काल में जैन दर्शन के ऋषि, मुनि, तीर्थंकर आत्मशुद्धि कर और सर्वज्ञता को प्राप्त कर उस आत्मिक तकनीक से युगपत् संसार को देखकर सही तथ्य प्रकट करते थे।

भौतिक ज्ञान को विज्ञान कहा जाता है और जैन दर्शन में सच्चे ज्ञान को धर्म कहा जाता है। विज्ञान का अर्थ होता है - वि (विशेष) + ज्ञान (वस्तु के स्वरूप को जानना), अर्थात् वस्तु के सत्य स्वरूप को परीक्षण-निरीक्षणादि से विशेष रूप से जानने को विज्ञान कहते हैं। इस प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने वाला ज्ञानी है और वही वैज्ञानिक कहलाता है। प्राचीन जैन दर्शन के ऋषि, मुनि और तीर्थंकर तथा आज के वैज्ञानिक दोनों ही इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि सूक्ष्म से सूक्ष्म द्रव्य (पदार्थ) के, जिसका आगे और कोई अंश न हो, उस अंश (परमाणु) के आपस में घट-पट होने पर महत्तम वस्तुएं बनती हैं। उन्हीं के बड़े समुदाय के मिलन से परम महान् पृथ्वी आदि महत्तम वस्तुएं बनती है।

यदि द्रव्य (परमाणु) के गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से आपस में सूक्ष्म द्रव्य की घट-पट (मिलन-विघटन) नहीं होती और हमारे प्राचीन भारतीय ऋषि या मुनि इसे नहीं जानते

होते तो समय की गति का वे निर्धारण नहीं कर पाते और मनुष्य का व्यावहारिक कार्य नहीं चल पाता तथा काल-चक्र भी अस्तित्व में नहीं आ पाता। भारतीय ज्योतिष विज्ञान में कालगणना के लिए परमाणु के सूक्ष्मतम अंश को जिसका आगे ओर कोई अंश न हो, ऐसे शून्य समुदाय के परमाणुओं के आपस में घट-पट होने या मिलने में जितना समय लगता है, उस गति में मध्यम परिमाण की वस्तुएं बनती है। समय का निर्धारण इन अणुओं के मिलने की गति के आधार पर ही हुआ है। इन्हीं अणुओं के मिलने में जितना समय लगता है, उसके अनुसार ही ज्योतिषिय त्ररेणु, त्रुटि, वेध, लव, निमेष, क्षण, काष्ठा, लघु, नाड़िका, मुहुर्त्त, प्रहर, दिन-रात, पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष आदि की क्रमशः गणना होती है और युग व महायुग की भी गणना होती है। इसी के आधार पर जैन दर्शन में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल को गिना गया है जो कि एक के बाद एक निरंतर आते रहते हैं और कभी बंद नहीं होते क्योंकि समय (अणुओं) की गति कभी रुकती नहीं है, निरंतर चलती रहती है। समय का काल चक्र भी चलता रहता है और कभी रुकता नहीं।

सूक्ष्म अणुओं के समुदाय से बना यह ब्रह्माण्ड और उस ब्रह्माण्ड को चलाने के लिए इस संसार में जो भी क्रिया या घटना होती है, वह जीव अथवा अजीव के अधिग्रहण के कारण होती है। यह संसार जीव तथा अजीव द्रव्यों की क्रियास्थली है। ये जीव-अजीव दोनों प्रकृति के अभिन्न अंग हैं। प्रकृति में जीव के कर्म के अनुसार उसे फल प्राप्त होता है। उसी फल के अुनसार जीव को शरीर मिलता है। कर्म के अनुसार पुरस्कार और उसी के अनुसार दण्ड भी, यह प्रकृति का स्वाभाविक विधान है। उसके अच्छे-बुरे भावों का, उस पर बाहरी प्रभाव का, अच्छी-बुरी शब्द ध्वनि का तथा उसके ध्यान का, उस जीव की आत्मा पर प्रभाव पड़ता रहता है। वैसे, जीव की आत्मा कर्म करने को स्वतंत्र होती है। बाहरी जड़ पदार्थ (निर्जीव) के परमाणुओं का उसकी आत्मा पर प्रभाव तब ही पड़ सकता है, जब वह जीव चाहेगा, जबर्दस्ती नही, क्योंकि बाहरी जड़ पदार्थ (अजीव) के परमाणु चैतन्य आत्मा शक्ति के अधीन होते हैं। जीव की आत्मा अपने स्वाधीन संकल्प से कर्म करने या कर्म बंधन को स्वीकारने या नकारने को स्वतंत्र होती है। यदि वह अविवेक या अज्ञान से कोई कर्म बंधन की राशि पहले बांध चुका है तो वह इस जीवन में अपने सद्ज्ञान और सद्-संकल्प तथा कार्य से उसे तोड़ या बदल भी सकता है। उसके कार्य के अनुसार सूक्ष्म पुद्गल परमाणु आत्मा की ओर आकर्षित होकर उस जीव की आत्मा में चिपट जाते हैं। यह क्रिया जीव में चौबीस घंटे उसके कार्य के अनुसार होती रहती है। उसकी आत्मा में कम्पन होता रहता है और उस कम्पन की तरंगों से अपने अच्छे और बुरे भावों और कार्यों के अनुसार आत्मा (जीव) का स्वभाव बनता और बिगड़ता रहता है। सुख-दुःख, पुण्य-पाप मिलता रहता है और जीव का पुनर्जन्म होता रहता है।

लेकिन जीव पूर्णतः नष्ट नहीं होता। इसीलिए जैन दर्शन में द्रव्य (जीव-अजीव) को परिणाम-स्वभावी बतलाया गया है। परिणाम का अर्थ पर्याय होता है और पर्याय का अर्थ है एक अवस्था रूप द्रव्य (अणु) का पलट (बदल) कर दूसरी अवस्था रूप होना। इसलिए लोक (संसार) का द्रव्य जीव-अजीव आदि का आकार तो नित्य है, पर द्रव्यों (जीव-अजीव) की पर्यायें बदलती रहती हैं। इस प्रकार यह संसार चलता रहता है। जो अवस्था जीव-अजीव द्रव्य की कल थी, वह आज नहीं है और जो आज है, वह कल नहीं रहेगी। समय परिवर्तन के साथ जीव-अजीव का यह परिवर्तन इतना सूक्ष्म होता है कि हम आंखों से देख या अनुभव नहीं कर सकते परन्तु वह समय की गति के अनुसार होता रहता है।

इस बात को जैन दर्शन तीन शब्दों में प्रकट करता है - 'उप वेइवा', 'विग ये इवा' और 'एइवा' अर्थात् उत्पन्न होता है, नाश होता है और निश्चल रहता है। इसे इस प्रकार भी कहा जाता है - **उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्** अर्थात् युगपत् उत्पत्ति, विनाश तथा ध्रौव्य ही सत् है।

इस प्रकार संसार में चारों और फैले हुए जीव-अजीव अणुओं या पुद्गलों का फैला हुआ समूह ही ब्रह्म है। इनके कण-कण ही संसार को चलाते हैं और बिगाड़ते हैं। ये ही ईश्वर हैं। ये ही सृष्टि को चलाने वाले, पालन करने-कराने वाले और संहार करने वाले हैं।

मुण्डक उपनिषद २१२/११ में यह श्लोक आया है -

ब्रह्मै वेदममृत पुरस्ताद,
ब्रह्म पश्चात् ब्रह्म दक्षिणतश्चत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृत्तं,
ब्रह्मवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।।

अर्थात्, यह अमृत स्वरूप ब्रह्म सामने है ब्रह्म ही पीछे हैं, ब्रह्म ही दायीं ओर तथा बायीं ओर, नीचे की ओर तथा ऊपर की ओर भी फैला है। यह जो सम्पूर्ण जगत् है, यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है।

इस तरह संसार में जितने पदार्थ हैं, वे उतने ही रहेंगे, उनमें कोई अंतर नहीं आता, केवल उनमें परिवर्तन होता रहता है, उनमें रूपांतरण होता रहता है, नया कुछ नहीं जुड़ता। यही जैन दर्शन का परिणामी संसार है जो नित्यवादी है और यही ईश्वर या भगवान है। यह अभी के वैज्ञानिकों की खोज नहीं है वरन् युगों पूर्व से भारतीयों की मान्यता है।

- ५६६, पांड्या भवन, मनिहारों
का रास्ता, जयपुर -३०२००३

जय महावीर नमो !

(कीर्तन)

- डॉ० ज्योति प्रसाद जैन

जय त्रिशला-नन्दन महावीर नमो !
भव-भय-भंजन वीर नमो !!

सिद्धारथ राजदुलारे, तिहुं जग के उजियारे !
जन-जन के प्यारे, जय महावीर नमो !
पाप-निकंदन वीर नमो !!

लोकालोक प्रकाशी, भविजन कमल विकाशी !
गुण अनन्त की राशी, जय महावीर नमो !
हरि-कृत-वन्दन वीर नमो !!

मोक्ष-मग-नेता, करम-कलंक-विजेता !
शुद्धातम-चेता, जय महावीर नमो !
रहित-सपंदन वीर नमो !

करुणा-सागर पर-उपकारी, सत्य-अहिंसा अवतारी !
सुधर्म-ध्वज-धारी, जय महावीर नमो !
भक्त-उर-चन्दन वीर नमो !

सन्मति के दाता, वर्द्धमान सुख-साता !!
अखिल जग-त्राता, जय महावीर नमो !
'ज्योति'-मन-रंजन वीर नमो !

तुम्हें जीना है

- श्री राजीव कान्त जैन

ये थकान क्यों?
अभी तो आधा रास्ता भी
तय नहीं हुआ!
माथे पर पसीना क्यों?
गले में कांटे क्यों उग आये?
पैरों में छाले क्यों?

हवाई जहाज
जिसमें ईंधन न पूरा हो
रास्ता पूरा नहीं करता।
क्या तुम्हारी यही नियति है?
नहीं, नहीं! भूलो मत
रेगिस्तान के हवाई जहाज को
हो सकता है
तुम अन्जान हो उस थैली से
जिसमें संचित है
सूखे दिनों के लिये जल।

तुम्हें पहचानना होगा
उस थैली को,
अपने में छिपे ईंधन को।
ईंधन चुका नहीं है,
तुम्हें रास्ता पूरा करना ही होगा,
गंतव्य तक पहुंचना ही
तुम्हारा लक्ष्य है।
थकान से रुकना हार है,
हारे की मौत है,
तुम्हें जीना है।

- जनरल मैनेजर, रेल विकास निगम लि., पुणे

सब कुछ नहीं देता

- श्री अमरनाथ

किसी इन्सान को ईश्वर, यहाँ सब कुछ नहीं देता ।।
किसी को कुछ नहीं देता, किसी को कुछ नहीं देता।।
उसे उतना मिलेगा ही, लिखा तकदीर में जितना
किसी का हक ना ज्यादा पर, किसी को कम नहीं देता।
किसी इन्सान को ईश्वर, यहाँ सब कुछ नहीं देता।।
किसी के पास ना भ्राता, किसी के पास ना नारी
तरसता बाप को कोई, किसी को है न महतारी
सभी को बाँचनी होगी, लिखी तकदीर की भाषा
किसी को दी नहीं बेटी, किसी को सुत नहीं देता।
किसी इन्सान को ईश्वर, यहाँ सब कुछ नहीं देता।।
किसी का ढल गया यौवन, किसी को ना मिला यौवन
चला घुटरन नहीं कोई, किसी का छिन गया बचपन
किसी की बेल मुरझाई, कली खिलकर न मुस्काई
किसी भूमि को रख ऊसर, उसे सिंचन नहीं देता।
किसी इन्सान को ईश्वर, यहाँ सब कुछ नहीं देता।।
अधिक पास जिसके जितना, उतना भूखा नंगा वह
इधर बिना कपड़े नंगा, है कपड़ों में नंगा वह
सभी प्यासे यहाँ पर हैं, सब तो नंगे भूखे हैं
सभी की प्यास उतनी ही, किसी को कम नहीं देता।
किसी इन्सान को ईश्वर, यहाँ सब कुछ नहीं देता।।
कहीं योगी बना घूमे, कहीं भोगी बना घूमे
निरोगी उम्र भर कोई, कोई रोगी बना घूमे
उसे उतना घुमाता है, जिसे जितना घुमाना है
जगत को ईश तो चक्कर, कभी भी कम नहीं देता।
किसी इन्सान को ईश्वर, यहाँ सब कुछ नहीं देता।।
लिए है ढेर डिग्री का, तरसता काम को फिर भी
बना बुद्धि का है कुबेर, तरसता नाम को फिर भी
किसी को धूप की चाहत, किसी को रूप की चाहत
रहा जो बेचता कपड़ा, कफ़न उसको नहीं देता।

किसी इन्सान को ईश्वर, यहाँ सब कुछ नहीं देता।।
मिली जब धूप खिल-खिलती, तो तरसा शाम को वही
शहर से आशनाई की, तो तरसा गाँव को वही
बंद कर खिड़कियाँ सारी, बंद सब रौशनदान कर
किसी को सौंप दी कोठी, खुला आँगन नहीं देता।
किसी इन्सान को ईश्वर, यहाँ सब कुछ नहीं देता।।
मिले सुख पुत्र-पत्नी का, न फिर भी तोष जीवन में
पेट भर खाद्य, लक्ष्मी-सुख, नहीं संतोष जीवन में
बना चातक भटकता मन, तरसते प्राण हैं हरदम
मिली है देह कंचन सी, हेम सा मन नहीं देता।
किसी को कुछ नहीं देता, किसी को कुछ नहीं देता।।
किसी का ज्यादा पर न हक, किसी को कम नहीं देता।
किसी इन्सान को ईश्वर, यहाँ सब कुछ नहीं देता।।

- ४०१-ए, उदयन-१, बंगला बाजार, लखनऊ

परिवेश

- डॉ० परमानन्द जड़िया

पास-पास रहते न जान पहचान कुछ,
इतना मनुष्य व्यक्तिवादी आज हो गया।
हम हैं अकेले, परिवार से न नाता कुछ,
ऐसा सोचने का व्यक्ति आदी आज हो गया।।
तार-तार जिसके हुये हैं रंग बदरंग
आदमी वो फटे हाल खादी आज हो गया।
जिसकी न कल्पना करी थी कभी स्वप्न में भी,
आदमी वो वंचक फ़सादी आज हो गया।।
जाकर विदेश, भाषा बोली है बदल गयी,
संस्कार सारे, खान पान हैं बदल गये।
मम्मी हुई 'माम' और पापा जी हैं 'डैड' बने,
होनी बलवान परिधान हैं बदल गये।।
'ब्याय फ्रेंड' 'गर्ल फ्रेंड' जीवन-हितैषी बने,
चिन्तन के सारे प्रतिमान हैं बदल गये।
कैसे बतलायें 'परमानंद' जो देख रहे,
उपमेय और उपमान हैं बदल गये।।

-'जड़िया निवास', ५१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ

चमत्कारी गुरु

- श्रीमती शेफाली मित्तल

गुजरात में जन्मे गुरु श्रीनन्द जी महाराज अपने चमत्कारों के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। सम्पूर्ण भारत में समय-समय पर भिन्न-भिन्न शहरों में उनके शिविर लगा करते थे। बड़ी दूर-दूर से श्रद्धालुगण शिविर में महाराज जी का प्रवचन सुनने आते थे। महाराज जी अपनी चमत्कारिक चिकित्सा के लिए भी काफी ख्याति प्राप्त थे। ऐसा प्रचार था कि वे अपनी साधना के बल से शिविर में बैठे हुए प्रत्येक व्यक्ति के मन को पढ़ लेते हैं।

मैंने अपने आफिस में गुरु जी के विषय में काफी सुन रखा था। मेरी तबियत अक्सर खराब रहती है। छोटी-सी उम्र में ही कई बीमारियों ने मुझे घेर लिया है। हमारे शहर में जब उनका शिविर लगा तो मुझे भी उनके दर्शन करने की इच्छा हुई। मेरे आफिस में मेरे हम-उम्र (२५ से ३० वर्ष) साथी गुरुजी के प्रत्येक शिविर में शामिल होते थे। उन्हीं के साथ मैंने भी इस बार जाने का प्रोग्राम बनाया तो पता चला कि गुरु जी के दर्शन की फीस दस हजार रुपये है। शिविर तीन दिन से लेकर पांच दिन तक चलता है। शिविर से जो लोग अधिकाधिक लाभान्वित होना चाहते हैं वे तीन दिन के बाद पुनः दस हजार रुपये जमा करते हैं।

पहले दिन गुरु जी का भाषण सम्पूर्ण जनता निःशुल्क सुन सकती है। मैं भी पहले दिन अपने मित्र के साथ शिविर में चली गई। सर्व प्रथम गुरुजी का रुप्यक-मालाओं से स्वागत किया गया। तत्पश्चात् वे फूलों से सजे सिंहासन पर विराजमान हुए। उन्होंने शरीर पर गेरुए वस्त्र धारण कर रखे थे। कुछ मंत्रोच्चारण के बाद गुरुजी ने अपना प्रवचन आरम्भ किया। गुरुजी की आवाज काफी प्रभावशाली और ओजपूर्ण थी। उनकी गरिमा और महिमा को देखकर ऐसा लगा कि कोई भी व्यक्ति उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

फिर भी, एक ही बात जानने की मेरे मन में बार-बार उत्सुकता हो रही थी कि जब गुरुजी धर्म का मार्ग दिखाने के लिए शिविर आयोजित करते हैं और निस्वार्थ सेवा को सर्वोपरि बताते हैं तो हजारों लोगों से फीस के रूप में प्राप्त धनराशि का उपयोग वे कहां करते हैं। तभी एक श्रद्धालु ने उनके समक्ष यह प्रश्न रख दिया कि यदि वे आम जनता के उद्धार के लिए धरती पर अवतरित हुए हैं और उन्हें किसी प्रकार का लालच नहीं है तो उनके दर्शन बिना किसी फीस के क्यों नहीं सम्भव हो सकते हैं। इस प्रश्न से गुरुजी के तन-बदन में जैसे आग लग गई हो। वे बौखला कर बोले - "जिन लोगों को रकम का मुंह देखना है उनको भगवान से भेंट की आस छोड़ देनी चाहिए। एक रिक्शे वाला सदैव रिक्शा ही चला सकता है, कभी कार या हवाई जहाज के ख्वाब नहीं देख सकता।"

मुझे गुरुजी का उत्तर कुछ अटपटा-सा लगा। कुछ ही समय पूर्व वे अपने भाषण में बता रहे थे कि "भगवान प्रत्येक मनुष्य के मन में बसते हैं। ये तो मोह-माया का बंधन है जिसमें फंसकर मनुष्य भगवान को भूल जाता है। मेरे-तेरे का भाव तो मनुष्य स्वयं उत्पन्न करता है। भाग्य का लिखा कोई नहीं बदल सकता। अतः अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए सत्कर्म करो, भगवान स्वयं मिलेंगे।"

प्रवचन के अंत में मेरे मित्र ने मुझे बताया कि गुरुजी के हाथ में संजीवनी शक्ति है। वे जिसके सिर पर अपना हाथ फेर देते हैं उसकी सारी बीमारियां दूर हो जाती हैं। पण्डाल में उपस्थित सभी पुरुष, स्त्री व बच्चे गुरुजी की चरण रज लेने के लिए पंक्तिबद्ध होकर खड़े थे। मैं फिर से एक बार सोचने के लिए मजबूर हो गई कि किसी व्यक्ति की शारीरिक बीमारी भला सिर्फ हाथ फेरने से कैसे ठीक हो सकती है। थोड़ी देर पहले ही गुरुजी अपने प्रवचन में कर्मों की महिमा बताते हुए कह रहे थे कि "जो बोया है वही तो काटोगे अर्थात् पूर्व जन्म के कर्मों का फल आप इस जन्म में भोग रहे हैं। यदि आपने कभी किसी को कष्ट नहीं पहुंचाया तो इस जन्म में आप स्वस्थ एवं निरोग जीवन व्यतीत करोगे। यदि किसी को बहुत सताया था तो वह यातना इस जन्म में आपके साथ होगी। वह पीड़ा आर्थिक, शारीरिक और मानसिक किसी भी प्रकार की हो सकती है। इसी प्रकार इस जन्म के कर्मों का फल आप अपने अगले जन्म में पाओगे। अतः अच्छे कर्म करो। गरीबों की मदद करो। बीमारों की सेवा करो तथा उनके इलाज का बड़े से बड़ा खर्च वहन करो, इत्यादि। ऐसा करने से यदि आपको कोई पीड़ा अथवा कष्ट हैं तो वे कम होंगे और आप हर प्रकार की परेशानी से शीघ्र मुक्त होंगे।"

सम्पूर्ण जनता पूर्णतः उनके सम्मोहन में थी। गुरुजी के चित्र का लॉकेट भी शिविर में उपलब्ध था जिसे लोग खरीदकर अपने गले में पहन रहे थे। गुरुजी के इस रूप की कल्पना मुझे न थी। अतः वहाँ जाकर भी मैं श्रद्धापूर्वक उनको नमन न कर सकी। भगवान का अवतार बनकर गुरुजी, भगवान की भक्ति करना सिखाने के बहाने सारी दुनिया को लूटते हुए नजर आ रहे थे।

आज सब लोग किसी-न-किसी दौड़ में शामिल हैं। आजकल युवावर्ग में सहन शक्ति लगभग समाप्त हो गई है। मन अशान्त रहता है। यही कारण है कि हमारे जैसा पढ़ा-लिखा युवावर्ग अपना विवेक खोकर गुरुजी के पीछे आया हुआ है।

शिक्षित युवावर्ग को गुरुडम से सचेत रहना आवश्यक है। चाहे किसी भी सम्प्रदाय के साधु-साध्वी, गुरु या धर्माचार्य हों, सभी अपनी चमत्कारिक शक्ति का प्रचार कर जनता को मूढ़ बनाते हैं और धर्म के मर्म से दूर करते हैं।

- मकान नं० ५०२, सेक्टर ८, पंचकूला-१३४१०९

गुणस्थान का अध्ययन

- डॉ. (श्रीमती) दीपा जैन

जैन दर्शन से जुड़ा गुणस्थान अभिगम आध्यात्मिक विकास की अवस्थाओं को श्रेणीगत क्रम में स्पष्ट करता है। यह भारतीय दर्शन परम्परा व तत्व चिन्तन की एक मजबूत कड़ी है जिसमें जीवन को परिशुद्ध बनाने हेतु संकलित व सुसंगठित चिन्तन देखने को मिलता है। गुणस्थान का वैज्ञानिक स्वरूप व मनोवैज्ञानिक अभिगम तथा अन्य भारतीय दर्शनों के साथ इसकी तुलनात्मक स्थिति का विश्लेषण इस शोध-प्रलेखन में यथास्थान वर्णित है।

"गुण स्थान" वास्तव में आध्यात्मिक आरोह-अवरोह अवस्थाओं की कार्यकारण आधारित वैज्ञानिक व तार्किक कसौटी है जिसमें यह परख की जाती है कि भावों के किस प्रकार के परिणमन से उत्कृष्टता की प्राप्ति होती है तथा किस प्रकार के मनो-संवेगों व मूल्यों के परिणमन से गुणस्थानक अधोगति होती है।

भारतीय चिंतन परम्परा मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त है - वैदिक परम्परा और श्रमण परम्परा। वैदिक परम्परा प्रवृत्तिमार्गी है। इसके दो भाग हैं - कर्मकांड और ज्ञानकांड। श्रमण परम्परा निवृत्तिमार्गी है। इसमें मुख्य रूप से दो धर्मों का समावेश होता है - जैन धर्म और बौद्ध धर्म यद्यपि महावीर स्वामी के समय में ३५६ धर्म सम्प्रदाय विद्यमान थे। ये दोनों ही धर्म मुख्य रूप से इस संसार को छोड़कर जन्म और मरण के चक्र से छुटकारा पाकर चिर स्थाई सुख की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने में विश्वास करते हैं जिसे मोक्ष कहा जाता है।

मोक्ष रूपी चरम लक्ष्य को पाने के लिए जैन मनीषियों ने छः द्रव्य कहे हैं - जीव, अजीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। यह ब्रह्मांड दो भागों में विभक्त है - लोकाकाश और अलोकाकाश। ये छहों द्रव्य लोकाकाश में पाये जाते हैं। इस जगत में सात तत्व होते हैं - जीव, अजीव, आस्त्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। गुणस्थानों की गति के साथ इनका सह-सम्बन्ध देखने को मिलता है। मोक्ष के तीन संयुक्त मार्ग बताये गये हैं। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यकचारित्र।

भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषता यह है कि वह अंतिम लक्ष्य के रूप में मोक्ष से कम कुछ भी स्वीकार करने को तैयार नहीं है। भारत के लगभग हर प्रमुख दर्शन में आध्यात्मिक उन्नति की सैद्धान्तिक स्थितियों को समझाया गया है। जैन दर्शन में गुणस्थान एवं उसमें वर्णित १४ स्थितियों को स्थान मिला है। इसकी दो प्रमुख परम्पराएं हैं - श्वेताम्बर और दिगम्बर।

श्वेताम्बर परम्परा में १४ आवश्यक निर्युक्तियों में गुण-स्थान का उल्लेख नहीं मिलता है। गुणस्थान शब्द का सर्वप्रथम **आवश्यकचूर्णि**, सिद्धसेनमणि की **तत्त्वार्थ भाव्यवृति**, हरिभद्र की **आवश्यकनिर्युक्ति** की जिस गाथा में १४ गुणस्थानों के समकक्ष १४ भूतगामों का उल्लेख मिलता है उन्हें हरिभद्र की आठवीं शताब्दी की टीका में मूल निर्युक्ति की रचना न मानकर किसी संग्रहणी गाथा से लिया हुआ माना जाता है। **समवायांग** में १४ स्थितियों का उल्लेख है किन्तु उसे जीवठाण या जीवस्थान कहा गया है।

दिगम्बर परम्परा में पांचवी-छठवीं शती ई० के प्रमुख ग्रन्थ **षट्खण्डागम, मूलाचार, भगवती अराधना** हैं, जिनमें गुणस्थानों की उपस्थिति है। १४ गुणस्थान व्यवस्थित स्वरूप में **षट्खण्डागम** में मिलते हैं भले ही उन्हें जीवसमास कहकर सम्बोधित किया हो। **मूलाचार** में १४ गुणस्थानों के गुणनाम हैं। पूज्यपाद देवनन्दीजी की **सर्वार्थसिद्धि टीका** में भी इन गुणस्थानों (गुणट्ठाण) का विस्तृत उल्लेख है - इसमें १४ मार्गणाओं और गुणस्थान के सम्बन्ध को लेकर विस्तार से वर्णन है। आचार्य कुन्द-कुन्द के **कषाय पाहुड़** में इसकी चर्चा नहीं है किन्तु उनकी अन्य कृतियों **नियमसार** और **समयसार** में मग्गणाठाण, गुणठाण व जीवठाण शब्दों का विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया गया है। इन सभी में आध्यात्मिक विकास के कुछ-न-कुछ घटकों या अंशों की चर्चा की गई है, यहां तक कि गुणस्थान सिद्धान्त में प्रयुक्त शब्दावली उपशम, क्षय, क्षीणमोह, सूक्ष्म सम्पराय, कषायचतुष्क, भावों, जीवत्व आदि का प्रयोग इनमें हुआ है, लेकिन गुणस्थानों या १४ भूमियों/पर्यायों को लेकर **षट्खण्डागम** के सिवाय अन्यत्र समन्वित स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता। गुणस्थान की अवधारणा लगभग पांचवी सदी के उत्तरार्द्ध और छठी सदी के पूर्वार्द्ध में कभी अस्तित्व में आयी होगी, ऐसा माना जा सकता है। इस समय में जीवस्थान, गुणस्थान व मार्गणास्थान का एक-दूसरे से पारस्परिक सह-सम्बन्ध निश्चित हो चुका था।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गोम्मटसार (जीवकाण्ड), नेमिचन्द्र कृत **द्रव्य संग्रह**, भट्ट अकलंक कृत **राजवार्तिक** और विद्यानन्दजी कृत **श्लोकवार्तिक** तथा **दर्शनसार** में तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, सृष्टि स्वरूप, मुनि आचार और श्रावकाचार के मद्देनजर बारह भावना या अनुप्रेक्षाओं (अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म) का वर्णन किया गया है। निर्जरा अनुप्रेक्षा के अन्तर्गत कर्म-निर्जरा के आधार पर जिन बारह अवस्थाओं का उल्लेख मिलता है उनमें से यदि कुछ नामान्तर को छोड़ दिया जाय तो गुणस्थान में वर्णित स्थानों से काफी समानता प्रतीत होती है। **तत्त्वार्थसूत्र** शैली पर बौद्ध परम्परा व योग दर्शन व्यवस्थाओं का भी प्रभाव हो सकता है। बौद्ध

दर्शन में आध्यात्मिक विकास की ४ भूमियों और **योगवशिष्ठ** की ७ स्थितियों की तरह उमास्वामीकृत **तत्वार्थसूत्र** में आत्मशुद्धि की १० विधि, चतुर्विधि व सप्तविधि को आधार बनाया गया है।

गुणस्थान के स्थान पर जीवसमास का उपयोग होने के बावजूद **षट्खण्डागम ग्रंथ** में गुणस्थान अवस्थाओं की पूर्णता देखने को मिलती है। श्वेताम्बर साहित्य की आवश्यक निर्युक्तियों में १४ भूतग्रामों का उल्लेख है किन्तु गुणस्थान अवस्थाओं का नहीं। **समवायांग** में उपलब्ध १४ स्थानों को जीवठाण कहा है। **षट्खण्डागम** में गुणस्थान सम्बन्धी गाथायें एवं **आचारांग निर्युक्ति** की गाथायें कसाय शब्द के अतिरिक्त पूरी ज्यों की त्यों हैं -

सम्मतुपत्ती विय सावय विरदे अणंत कम्मसे।
दंसण मोहक्खवए कसाय उवसामए य उवसंते।।
खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा मेव असंखेज्जा।
तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणा य सेडीओ।।

- षट्खण्डागम

सम्मतुपती सवाय विरए अणंतकम्मसे।
दंसंण मोहक्खवए उवासामन्ते य उवसंते।।
खवए य खीण मोहे जिणे अ सेढ़ी भवे असंखिज्जा।
तव्विवरीओ कालो संखज्जगुणाइ य सेढ़ीए।।

- आचारांग निर्युक्ति

उमास्वामीकृत **तत्त्वार्थसूत्र** में कर्म निर्जरा की १० अवस्थाएं वर्णित हैं -

सम्यग्दृष्टि श्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्ष-पकोपशमकोपशान्त
मोहक्षपकक्ष्णीणमोलिनाः क्रमशे संख्येयगुणानिर्जराः।। ४७, अ. ६।।

गुणस्थान एवं मार्गणाएं

जिस प्रकार जीवादि सप्त तत्व व षट्द्रव्य गुणस्थानक विषयवस्तु से सम्बन्ध रखते हैं वही सरोकार गुणस्थान से मार्गणाओं का है। सत् संख्या आदि आठ अनुयोग द्वारों से युक्त चौदह जीवसमास जिसके द्वारा या जिसमें खोजे जाते हैं उसे मार्गणा कहते हैं। जैन दर्शन में जिन चौदह मार्गणाओं का उल्लेख मिलता है वे इस प्रकार हैं - गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहार।

गुणस्थान का अर्थ -

गुण+स्थान= गुणस्थान

गुण= आत्मा की चेतना, सम्यक्त्व समकित, संयम चारित्र तथा आत्मा वीर्य

इत्यादि की शक्तियां गुण हैं। गुण शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। इसका एक अर्थ है - जिसके द्वारा द्रव्य से द्रव्यांतर का ज्ञान हो। स्थान= आत्मा की शुद्ध विशुद्धताओं की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं, आचरण या पर्याय को स्थान कहा जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अत्मिक शक्तियों को साधना हेतु आत्मा के अपकर्ष और उत्कर्ष श्रेणीक्रम की जो स्थितियां या कसौटी परक आधार हैं उन्हें **गुणस्थान** कहा जा सकता है। कहा भी है - गुणस्य स्थानं गुणस्थानम् - अर्थात् जो गुण का स्थान है वही गुणस्थान है। गुणस्थानों का सम्बन्ध जीव या आत्मा के गुणों एवं लोकाकाश में उसकी स्थिति के साथ होता है। जीव व कर्मों के आवरण के कारण स्थितिबन्ध होता है। यह कर्मों का प्रमाण एवं तीव्रता स्थान निर्धारण में अहम् भूमिका निभाती है। जीव के भावों में होने वाले उतार-चढ़ाव का बोध जिससे होता है जैन सिद्धान्त में उसे गुणस्थान कहा जाता है। गुणस्थान भावाश्रित हैं, न कि क्रियाकाण्ड आश्रित। मोक्षमार्ग में गुणस्थानों के स्वरूप को जानना बड़ा जरूरी है। ये गुणस्थान चौदह होते हैं।

चौदह गुणस्थान

१. मिथ्यात्व गुणस्थान

इस स्थिति में जीव यथार्थ बोध से वंचित रहता है तथा मिथ्यात्व व सम्यक्त्व के मध्य भेद नहीं कर पाता। सत्य-असत्य को न पहचानते हुये वह दिग्भ्रमित व्यक्ति की तरह लक्ष्य से दूर भटकता रहता है। पर-पदार्थों में सुख की खोज व अनुभूति करता है। अज्ञानता के चलते वह आन्तरिक सुख अर्थात् परमानन्द का बोध व विचार नहीं कर पाता है। विवेकशून्यता का प्रभाव उसके आचरण में छा जाता है। इस गुणस्थान अवस्थित आत्माएं दो प्रकार की मानी गई हैं -

अ. भव्य आत्मा - जो भविष्य में कभी न कभी यथार्थ बोध से युक्त होकर नैतिक आचरण पथ पर अग्रसर हो सकेगी।

आ. अभव्य आत्मा - जो कभी भी आध्यात्मिक पथ पर नहीं चल सकेगी अर्थात् अनन्त काल तक इसी स्थान में रहेगी।

२. सास्वादन गुणस्थान

द्वितीय क्रम में स्थित यह गुणस्थान विकास क्रम का परिणाम न होकर पतनोन्मुख अवस्था का प्रतिनिधित्व करता है, अर्थात् जब आत्मा चतुर्थ गुणस्थान से पतित होकर तृतीय व द्वितीय गुणस्थानों से गुजरता है। यह एक मध्यावस्था है जिसमें जीव को न

तो सम्यग्दृष्टि कहा जा सकता है और न ही मिथ्यादृष्टि। ऐसी दशा में जीव सम्यक्त्व से च्युत तो हो चुका है किन्तु अभी मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुआ है। इस मध्यावधि का काल क्षणिक (छः अवली) होता है ठीक उसी प्रकार जैसे वृक्ष से टूटकर फल का जमीन तक पहुँचने का मध्यकाल।

३. मिश्र या सम्यक्-मिथ्यादृष्टि गुणस्थान

यह गुणस्थान भी जीव के चतुर्थ व ११वें गुणस्थान से पतनोन्मुख हो जाने पर पश्चातवर्ती प्रथम सोपान है। उपशान्त की स्थिति में यदि साधक कषायादिक परिणामों का पूर्ण या स्थाई शमन नहीं करता और वासनात्मक पक्ष की ओर झुकाव करता है तो वह जीव पतित होकर इस तृतीय गुणस्थान में आता है। अन्तर्मुहूर्त के इस वैचारिक संघर्ष में यदि पाशविक शक्तियां इस पर हावी हो जाती हैं तो वह मिथ्यादृष्टि हो जाता है और प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में पहुँच जाता है। इसके विपरीत यदि साधक का निर्णयात्मक रुझान नैतिक आचरण या सम्यक्त्व व्यवहार के अवबोधन की ओर दृढ़ हो जाता है तो वह चतुर्थ गुणस्थान में चला जाता है।

४. अविरत सम्यक दृष्टि गुणस्थान

वास्तव में यह जीव की अध्यात्मिक विकास यात्रा का प्रथम सोपान है जिसमें आत्मा को नैतिक आचरण का बोध होता है। इस गुणस्थान का आरम्भिक दौर विवशता पूर्ण है जिसमें जीव अच्छे-बुरे का ज्ञान होते हुये भी बुरे से पृथक नहीं रह पाता है जैसा कि **महाभारत** के वर्णन में देखने को मिलता है, यथा कौरवों के अनुचित पक्ष में खड़े पितामह भीष्म व महात्मा विदुर की विवशता। इस अवस्था में जीव दर्शनमोहनीय का क्षय, क्षयोपशम, उपशम कर लेता है किन्तु चारित्रमोहनीय का क्षय शेष हो तो इसे सम्यग्दृष्टि जीव कहा जाता है।

५. देशविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान

आध्यात्मिक विकास यात्रा का यह पांचवा गुणस्थान नैतिक कर्तव्य पथ पर चलना आरम्भ कर देता है। देशविरत का आशय है - सांसारिक वस्तुओं के उपभोग में मर्यादाओं का पालन, विवेकपूर्ण तरीके से आवश्यकतानुरूप व मितव्ययतापूर्वक साधन-संसाधनों का ममत्व रहित उपयोग बनाते हुये साधना में रत रहना। यदि साधक प्रमाद के वशीभूत नहीं होता तो आगे के गुणस्थानों में बढ़ जाता है।

६. प्रमत्तसंयत या सर्वविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान

सर्वविरति गुणस्थान साधक हिंसादि अनैतिक आचरण का पूर्णतया त्याग करके सम्यकत्व के मार्ग पर दृढ़ता से बढ़ना आरम्भ करता है। उसमें कषायादि परिणामों

के बाह्य प्रकटीकरण का अभाव सा हो जाता है यद्यपि वह आंशिक बीजरूप में विद्यमान रहती है और उसके मन में व्याकुलता पैदा करती है। ऐसा तब ही होता है जब उसकी आत्मा इस बीजरूप प्रवृत्ति को छोड़ने के लिए छटपटाती रहती हो किन्तु छोड़ नहीं पाती।

७. अप्रमत्तसंयत गुणस्थान

इस गुणस्थान में वे सजग साधक आते हैं जो देह में रहते हुये भी देहातीत भाव से युक्त होते हैं। इस गुणस्थान में साधक का निवास अतिअल्प होता है अर्थात् कोई भी साधक ४८ मिनट से अधिक इस स्थिति में नहीं रह पाता क्योंकि दैहिक उपाधियां उसे विचलित कर देती हैं। यदि देहातीत भाव की अवधि इससे अधिक हो जाती है तो वह आध्यात्मिक विकास की आगामी श्रेणियों में चला जाता है।

८. अपूर्वकरण गुणस्थान

इस अवस्था में पहुँचकर आत्मा कर्मावरण के हल्के हो जाने से विशिष्ट आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति करती है। ऐसी स्थिति पूर्व में न हुई हो इसलिए इसे अपूर्व कहा जाता है। विकसित आत्मशक्ति के कारण उनके नवीन कर्मों का बन्ध भी अल्पकारक या अल्प मात्रा में ही होता है। इस अवस्था में साधक आत्मविश्वास से इतना भर जाता है कि वह मोक्ष को अपने अधिकार क्षेत्र की वस्तु समझने लगता है।

९. अनिवृत्तिकरण (बादर सम्पराय) गुणस्थान

सम्पराय= चारित्र मोहनीय कषाय, बादर=स्थूल। मोह के सूक्ष्म स्वरूप की उपस्थिति के चलते इसे बादर सम्पराय गुणस्थान कहा जाता है। बादर (स्थूल) कषायों का क्षय या उपशम इस गुणस्थान का शाब्दिक अर्थ है। इसका काल एक अन्तुर्मुहुर्त का है। जब जीव केवल ९ में से ६ कषाय भाव - हास्य, रति, अरति, भय, शोक व घृणा, को छोड़कर और बीजरूप (संज्जवलन) लोभ को छोड़कर, शेष समस्त काषायिक भाव विनष्ट कर देता है या उनका उपशम कर लेता है तब उसे यह अवस्था प्राप्त होती है।

१०. सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान

इस गुणस्थान में आत्मा के उपरोक्त ६ भाव भी क्षय या उपशम हो जाते हैं और फिर रह जाता है मात्र सूक्ष्म लोभ। दिगम्बर जैन दर्शन के मुताबिक यह कहा जा सकता है कि २८ कर्म प्रकृतियों में से २७ कर्म प्रकृतियों का क्षय करके साधक इस

गुणस्थान में पहुँचता है। लोभ का सूक्ष्म अंश होने के कारण ही इसका नाम सम्पराय है।

११. उपशान्त मोह गुणस्थान

यदि साधक कषायों का क्षय न करके उपशम के द्वारा १०वें गुणस्थान तक पहुँचा हो तभी इस गुणस्थान को प्राप्त होता है। अगली श्रेणी होने के बावजूद भी यहाँ से साधक निश्चित रूप से पतनोन्मुख होता है क्योंकि क्षय के अभाव में उपशम की गई कषायादि कर्म प्रवृतियां अवरोध की तरह साधक के विकास पथ पर खड़ी हो जाती हैं। इस गुणस्थान की स्थिति एक अन्तर्मुहुर्त काल की है। यदि जीवात्मा इस गुणस्थान में रहते हुये आयुष्य पूर्ण कर लेता है तो वह सम्यग्दर्शनयुक्त अनुत्तर विमान में उत्पन्न होता है, इसके विपरीत आयुष्य शेष होने पर उसी क्रम में पतन को प्राप्त होता है जिस क्रम में आरोह किया था (मिथ्यात्व गुणस्थान तक)।

१२. क्षीणमोह गुणस्थान

जो साधक क्षय विधि के द्वारा सूक्ष्म लोभ को भी नष्ट कर देते हैं वे १०वें गुणस्थान से ११वें गुणस्थान में न जाकर सीधे १२वें गुणस्थान में पहुँचते हैं, फिर वहाँ से कभी पतन नहीं होता। इस श्रेणी का साधक २८ कर्म प्रकृतियों का क्षय कर चुका होता है इसलिए इस गुणस्थान को क्षीणमोह गुणस्थान कहा जाता है। यह नैतिक व चारित्रिक विकास की पूर्ण अवस्था है जहाँ नैतिक-अनैतिक के मध्य संघर्ष समाप्त हो जाता है। नैतिक पूर्णता की यह अवस्था यथाख्याति चारित्र कहलाती है।

१३. संयोग केवली गुणस्थान

इस गुणस्थान में साधक साधक नहीं रहता क्योंकि उसके लिए साधना हेतु अब कुछ शेष नहीं रह जाता है। आत्म पुरुषार्थ से वह ४ घातिया कर्मों - ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय - का तो क्षय कर चुका है और अब उसके ४ अघातिया कर्मों - आयु, नाम, गोत्र व अन्तराय - का क्षय देह के परित्याग होने तक शेष रहता है।

१४. अयोग केवली गुणस्थान

इस गुणस्थान में रहने की कालावधि भी इतनी अल्प है जितनी कि पाँच ह्रस्व स्वरों अ, इ, उ, ऋ, लृ के उच्चारण में लगती है। इस अवस्था में जीव के समस्त कायिक योगों का निरोध हो जाता है। यह चरमादर्श उपलब्धि है, यह संन्यास है। इसके बाद की स्थिति को विचारकों ने निर्वाण एवं निर्गुण ब्रह्म कहा है।

जैन दर्शन में गुणस्थान के जिन १४ स्वरूपों या अवस्थाओं को स्वीकार किया गया है ये जीव की आत्मिक उन्नति या आध्यात्मिक प्रगति की विकास यात्रा की द्योतक हैं। इसमें प्रथम से चतुर्थ गुणस्थान तक की विकास यात्रा में सिद्धान्त बोध का प्रकटीकरण होता है जो दर्शन की अवस्थाओं का प्रतीक है। ५वें से १२वें गुणस्थान का सम्बन्ध सम्यक् चारित्र से है जो आध्यात्मिक उत्कृष्टता की अवस्थाएं हैं। दूसरे व तीसरे गुणस्थान वस्तुतः पतन की अवस्थाएं हैं किन्तु इनमें एक बार सम्यक्त्व को प्राप्त किया हुआ जीव ही वहाँ पहुँचता है। पतन के दौरान ये विश्राम स्थल की तरह हैं जहाँ से जीव प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होता है। ऐसी ही स्थिति ११वें व १२वें गुणस्थान के संदर्भ में है क्योंकि १०वें गुणस्थान में यदि जीव कषायादि भाव या कर्मों का क्षय कर लेता है तो वह सीधा १२वें गुणस्थान में पहुँचता है जबकि उपशांत या क्षयोपशम की स्थिति में वह पहले ११वें गुणस्थान में जाता है और वहाँ से पतित होकर पहले गुणस्थान तक जा सकता है। १२वें गुणस्थान के बाद पतन नहीं होता है, इसलिए इसके पश्चात के १३वें व १४वें गुणस्थान आध्यात्मिकता के श्रेष्ठतम या उत्कृष्ट शिखर कहे जाते हैं क्योंकि यहाँ केवलज्ञान का साम्राज्य रहता है। मोक्ष के लिए आयु कर्म के क्षीण होने की ही प्रतीक्षा रहती है।

प्रमुख भारतीय दर्शनों के आइने में गुणस्थान

जैन दर्शन में वर्णित गुणस्थान सिद्धान्त की अन्य भारतीय धर्मों में वर्णित स्वरूपों की स्थिति अथवा समान ध्येय सिद्धि हेतु उल्लिखित व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि गुणस्थान सिद्धान्त की मंशा व स्वरूप का सामान्य अवबोधन कर लिया जाय। जो दर्शन ईश्वरीय सत्ता पर आस्था रखते हैं उन्हें आस्तिक और जो नहीं रखते उन्हें नास्तिक कहते हैं। आस्तिक दर्शनों में मीमांसा, सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय एवं वेदान्त प्रमुख हैं। नास्तिक दर्शनों में चार्वाक, जैन एवं बौद्ध मुख्य हैं। जैन तथा बौद्ध दोनों ही दर्शनों में आध्यात्मिक विकास प्रमुख है तथा इनका अंतिम लक्ष्य भी निर्वाण है। दोनों का ही यह मानना है कि आत्मा के इस नैतिक विकास के आयामों में विशुद्धता का परिमाण बढ़ता जाता है। **'आजीवक'** सम्प्रदाय की मूल भावना मानवीय जीवन के विकास व उत्क्रान्ति से जुड़कर आध्यात्मिक चरमोत्कर्ष तक पहुँचने की है।

स्थविरवादी बौद्ध परम्परा में चतुर्थ गुणस्थानवाली अवस्था की तुलना 'सोतापन्न' अवस्था से की जा सकती है क्योंकि जिस प्रकार इस गुणस्थानक अवस्था में क्षयोपशमिक और औपशमिक भावों के चलते सम्यक् मार्ग से विमुख या पतनोन्मुख होने की संभावना बनी रहती है, ठीक उसी प्रकार सोतापन्न साधक भी पथ विमुख

हो सकता है। **महायानी बौद्ध परम्परा** में इसकी तुलना बोधिप्राणिधिचित्त से की जा सकती है। चतुर्थ गुणस्थान वाले जीव को सम्यक् मार्ग का बोध होता है तथा उस पर चलने की भावना भी होती है लेकिन वास्तव में वह उस पर चलना अभी प्रारम्भ नहीं कर पाता, उसी प्रकार बोधिप्राणिधिचित्त में भी यथार्थ मार्ग गमन या लोकपरित्राण की भावना का उदय हो जाता है लेकिन वह उस कार्य में प्रवृत्त नहीं होता।

गीता हिन्दू साहित्यिक संस्कृति का एक प्रमुख ग्रन्थ है। यह समुच्चय है व्यक्तित्व, श्रद्धा, बुद्धि, कर्म, नैतिक आचरण एवं आत्म विशुद्धि के अवबोधन का। इसमें जीवन दृष्टि और आचरण के वे विश्लेषणत्मक आयाम निहित हैं जो सांसारिक जीव की स्थिति का अवबोधन करते हैं। जीव शुद्धाचरण का ज्ञान ही न रखता हो, उसे अच्छे बुरे का ज्ञान तो हो किन्तु शुद्धाचरण में लीन न हो तथा अंतिम स्थिति वह है जिसमें विशुद्ध ज्ञान व आचरण का धारक होकर आत्मिक अनुभूति की ओर बढ़ता हो। **गीता** के अनुसार त्रिगुणातीत अवस्था साधना की चरम परिणति एवं विकास की अंतिम कक्षा है। गुणातीत अवस्था को प्राप्त जीव इन गुणों से विचलित न होकर उनमें होने वाले परिवर्तनों को सम्यक् भाव से देखता है। **गीता दर्शन** के अनुसार ऐसा इसलिए संभव हो पाता है क्योंकि गुणातीत होकर आत्मा का ज्ञान गुण सम्यक् हो जाता है। जैन दर्शन में इसकी तुलना संयोग केवली नामक १३वें गुणस्थान से तथा बौद्ध दर्शन की अर्हता भूमि से की जा सकती है। अंतिम अवस्था त्रिगुणात्मक देह मुक्ति की है जिसमें आत्मा वरण करता है परमात्म स्वरूप का। आठवें अध्याय में श्री कृष्ण ने कहा है कि मैं तुझे उस परम पद अर्थात प्राप्त करने योग्य स्थान को बताता हूँ जिसे विद्वानगण अक्षर या अक्षर परमात्मा कहते हैं जिसमें वीतराग मुनि ब्रह्मचर्य के साथ प्रवेश करते हैं। योग चंचलता को रोक कर प्राणशक्ति को शीर्ष मूर्धा में स्थिर कर ओम के उच्चारण के साथ जीव मेरे अर्थात् आत्म तत्व में विलीन हो जाते हैं। कालिदास ने भी योग द्वारा शरीर त्यागने का निर्देश दिया है। जैन दर्शन की अयोगकेवली नामक १४वें गुणस्थान की अवस्था से इसकी तुलना की जा सकती है। यद्यपि **गीता** में गुणस्थानों की भाँति क्रमिक आध्यात्मिक विकास के सोपानों का व्यवस्थित स्वरूप में वर्णन नहीं है फिर भी उसमें निहित गुणस्थानक सार को नकारा नहीं जा सकता है।

समीक्षात्मक रूप से यह कहा जा सकता है कि **योगवशिष्ठ** में वर्णित १४ श्रेणियां भले ही ज्यों की त्यों मेल न खातीं हों फिर भी दोनों दर्शनों के अभिगम लक्ष्य सिद्धि के पथ को लेकर उच्चस्तर पर साम्यता का प्रमाण मिलता है। योग साधना का अंतिम लक्ष्य चित्त निरोध है अर्थात् (मन) योगिक चंचलता (मन, वचन, काय)

को काबू में रखना ही योग निरोध है। चित्त में सत्व-रजस-तमस इन तीन गुणों की विद्यमानता रहती है। वास्तव में अस्थिरता राग-द्वेषादि, संकल्प-विकल्प के चलते उत्पन्न होती है। चित्त की विशिष्टता से सम्बन्धित योगिक स्थितियां गुणस्थानक दशाओं के साथ निकटतम सरोकार रखती हैं।

जैन दर्शन में आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से यदि ४ आश्रमों की सोपान स्थितियों का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि जैन दर्शन में मूलतः दो स्थितियां ही हैं - गृहस्थ और संन्यास। गृहस्थ स्थिति के उपभेद हो जाने से गृहस्थ व वानप्रस्थ आश्रम का संयुक्त रूप जैन दर्शन में इस प्रकार देखा जा सकता है कि चतुर्थ व पंचम गुणस्थान धारी गृहस्थ आश्रम का अधिकारी है किन्तु उसकी क्रियाएं पंचम गुणस्थान में अति उत्कृष्ट श्रावक की हो जाती हैं जो वानप्रस्थ आश्रम की अवस्था से कमोवेश मेल खाती प्रतीत होती हैं। वैदिक परम्परा में संन्यास की एक अवस्था को ही देखा जाता है जबकि गुणस्थानक परम्परा में आन्तरिक एवं बाह्य आचरण के आधार पर कई भेद-विभेद कर दिये गये हैं, यथा सातवें से चौदहवें गुणस्थान तक। इसमें उत्थान व पतन दोनों के ही विधान हैं जबकि आश्रम व्यवस्था में इस तरह की व्यवस्थाओं का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है, फिर भी निर्विवाद रूप से यह स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक उत्थान पथ की मूल भावनाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है। आध्यात्मिक विकास की इस यात्रा में अज्ञान, संशय, मनोविकार, स्व तथा स्वार्थ प्रेरित पुरुषार्थ के दायरे (गीता के अनुसार कर्म फल की आकांक्षा व तामसी वृत्ति) तथा लक्ष्य की तरफ प्रेरक सिद्धि की दृढ़ता का अभाव अति बाधक कारक हैं जो मुख्यतः मन का विषय है।

अंत में, यह कहा जा सकता है कि गुणस्थान अभिगम का सरोकार मानवीय विकास के प्रतिमानों से भी है। यदि समाज उपलब्ध साधनों का मर्यादित उपभोग, उपयोग व संग्रह करे तो इससे राष्ट्र की कई विकराल समस्याओं का समाधान इसमें मिलता है सर्वसुलभता की सुनिश्चितता के रूप में। भाईचारा, हम की भावना, परस्पर प्रेम वात्सल्य आदि मानवोचित गुणों का आविर्भाव इसके परिणाम स्वरूप संभव हो सकते हैं। मनोविकृति व समाजकंटक विषमताओं का उदय राग-द्वेषादि भावों व क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कषायों का ही तो परिणमन है और यही सामाजिक अपराधवृत्ति जीवन में आपाधापी की मूल जड़ है।

- **द्वारा डॉ० लोकेश जैन,**
सी.एस.आर.एम., गुजरात विद्यापीठ कैम्पस,
रांधेजा - ३८२६२० (गांधीनगर, गुजरात)

साहित्य सत्कार

बुद्धिरसायण वावन दोहा : कृतिकार पं० महिराज, सम्पादक एवं अनुवादक डॉ. (श्रीमती) सरोज जैन; प्र. राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान, बाहुबलि प्राकृत विद्यापीठ श्रीधवलतीर्थम्, श्रवणबेलगाला - ५७३१३५; २०१०; पृ. ८+१४७; मूल्य २००/-

बुद्धिरसायण वावन दोहा अपभ्रंश भाषा में निबद्ध है। इसके कृतिकार पं. महिराज हैं, परन्तु उनके विषय में कोई जानकारी नहीं है। उज्जैन के ऐलक पन्नालाल सरस्वती ग्रन्थ भण्डार में उपलब्ध पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि के आधार पर डॉ. (श्रीमती) सरोज जैन ने सम्पादन तथा अनुवाद किया है।

दो अन्य पाण्डुलिपियां ब्यावर में स्थित ऐलक पन्नालाल सरस्वती ग्रन्थ भण्डार में और नागौर के भट्टारकीय ग्रन्थ भण्डार संग्रहालय में उपलब्ध हैं। परन्तु उनकी प्रतिलिपि प्राप्त नहीं की जा सकी। नागौर की पाण्डुलिपि में विक्रम सम्वत् १७३० का उल्लेख है। अन्य पाण्डुलिपियों में समय का उल्लेख नहीं है। डॉ. सरोज जैन ने अपनी प्रस्तावना में उस पाण्डुलिपि का परिचय दिया है जिसके आधार पर उन्होंने मूल अपभ्रंश पाठ दिया है। हिन्दी अनुवाद संपादिक द्वारा स्वयं किया गया है।

इस ग्रन्थ में कुल ६२४ दोहे हैं। अध्यात्म और जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों से सम्बन्धित ६७ विषयों पर प्रकाश डाला गया है। विषय वस्तु के १८ प्रमुख बिन्दुओं को सम्पादिका ने इंगित किया गया है। अपनी प्रस्तावना में उन्होंने प्रयोग में आई ४४ सूक्तियों का भी उल्लेख किया है। कवि ने अपनी बात को सशक्त करने के लिए २९ दृष्टांतों का और २१ प्रतीकों/रूपकों का भी प्रयोग किया है। कवि ने अपनी बात कहने के लिए नारी (क्रिया) और प्रीतम के कथोपकथन की शैली को अपनाया है। उसने जैन धर्म की पारिभाषिक शब्दावलि के कुछ शब्दों का प्रयोग भी किया है। कवि द्वारा 'ठाकुर' और 'गोठ' शब्दों के प्रयोग से तथा पुष्पों से पूजा करने के उल्लेख से सम्पादिका ने यह अनुमान किया है कि कृतिकार पं. महिराज राजस्थान के निवासी थे और दिगम्बर जैन बीसपन्थी परम्परा से परिचित थे। ग्रन्थ की भाषा के सम्बन्ध में सम्पादिका का निष्कर्ष है कि वह परवर्ती अपभ्रंश है जिसमें राजस्थानी एवं अन्य प्रादेशिक मूल के शब्द भी सम्मिलित हैं। उन्होंने ऐसे विशिष्ट शब्दों की अर्थ सहित सूची भी दी है।

यद्यपि कृतिकार पं. महिराज के विषय में अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है, एक पाण्डुलिपि में सम्वत् १७३० का उल्लेख यह सूचित करता है कि वे १७वीं शताब्दी में वर्तमान थे। इससे यह इंगित होता है कि अपभ्रंश भाषा का प्रयोग साहित्य रचना के लिए १७वीं शताब्दी तक किया जाता रहा।

यह ग्रन्थ ३ संधियों में है। प्रथम संधि ऊँ से प्रारम्भ होती है ओर इसमें अ से त तक २६१ दोहे हैं, द्वितीय संधि में त से र तक संख्या २६२ से ४६० तक दोहे है और तृतीय संधि में र से छ तक संख्या ४६१ से ६२४ तक होते हैं। 'बावनी' का अर्थ होता है कि वर्णमाला के बावन अक्षरों से प्रारम्भ दोहे हों, परन्तु इसमें ४४ अक्षरों का ही प्रयोग किया गया है। ग्रन्थ का नाम भी 'वावन' नहीं अपितु 'बावन' दोहा ग्रन्थ होना चाहिए परन्तु यह विभ्रम लिपिकार के कारण भी हो सकता है।

प्रायः अज्ञात कृतिकार पं० महिराज द्वारा रचित इस दोहा ग्रन्थ को प्रकाश में लाने के लिए सम्पादिका डॉ० सरोज जैन तथा प्रकाशक साधुवाद के पात्र है।

Prakrit Primer : by Prof. Prem Suman Jain; pub. Bahubali Prakrit Studies and Research Institute, Sharavanbelgola/Rastriya Sanskrit Sansthan, New Delhi; rev. ed. 2010 ; pages 88; Price Rs. 120/-

It is an enlarged and revised edition of Dr. Prem Suman Jain's monograph **Introduction to Prakrit Literature**, published earlier in 1993. The name **Prakrit Primer**, now given, is, however, somewhat misleading. A Primer is an elementary school book for teaching a language, which it is not. It ought to have been named as **Introduction to Prakrit Language and Lilterature** as its contents seem to indicate.

Its contents are - the Prakrit language, the various uses of Prakrit, Prakrit poetry literature, Prakrit narrative literature, Pali and Prakrit stories, independent narrative texts, other Prakrit works, cultural significance, some prominent writers, and Prakrit gems. Besides, it gives lists of Prakrit departments in Indian universities and of institutions conducting Prakrit studies in India. A list of 19 Western scholars who worked on Prakrit works during 1886 to 1975 is also appended. The references also give a sort of bibiography of studies in Prakrit language and literature.

As a primary introduction to Prakrit language and literature the book is a handy treatise and for a general reader it may stimulate curiosity to know more about the subject.

श्रवण चरितोपाख्यान : ले० डॉ० परमानन्द जड़िया; प्र० मधूलिका प्रकाशन, १८६/१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ-१८; जनवरी २०११; पृ. ७२; मूल्य ४०/-

साहित्य भूषण डॉ० परमानन्द जड़िया ने मातृ-पितृभक्त श्रवण कुमार को कथानायक बनाकर **श्रवण चरितोपाख्यान** प्रबन्ध काव्य की रचना की है। अपने पूर्व कथन में लेखक ने इसकी कथावस्तु और रचना प्रारूप का विवेचन किया है। अपनी अस्वस्थता की अवस्था में उन्होंने इसका प्रणयन किया और इसके प्रकाशन तक वह स्वास्थ्य लाभ कर गये जिसके लिये उन्होंने उन महाप्रभु को नतशिर करबद्ध प्रणाम निवेदित किया है जिनकी अन्तःप्रेरणा से यह रचना निबद्ध हो सकी।

श्रवण कुमार की कथा लोकमानस में प्रचलित है। मातृ-पितृ भक्ति के आदर्श रूप में श्रवण कुमार की कथा लोकप्रिय है। डॉ. परमानन्द जड़िया जी ने इसे अपनी विधा में छंद बद्ध कर प्रस्तुत किया है। हिन्दी साहित्य में इस कृति का यथोचित समादर अभीष्ट है।

दिशाबोध : जनवरी, २०११, जैन पत्रकारिता विशेषांक; सं.-डॉ. चीरंजी लाल बगड़ा; ४६, स्ट्रैंड रोड, तीसरा तल्ला, कोलकाता-७००००७

इस अंक में डॉ. चीरंजी लाल बगड़ा का शोधपूर्ण आलेख 'जैन पत्रकारिता का इतिहास - दशा और दिशा' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विगत वर्षों से लगातार बिना किसी विज्ञापन के **दिशाबोध** का प्रकाशन भी एक उल्लेखनीय सुसंवाद है। इस अंक के सम्बन्ध में हमने जो प्रतिक्रिया संपादक महोदय को संसूचित की थी उसका उल्लेख उन्होंने फरवरी २०११ के अंक में किया है जिसके लिए हम आभारी हैं।

जैन पत्रकारिता के इतिहास के सम्बन्ध में यह उल्लेख किया जाना उपयुक्त होगा कि स्व. डॉ. नेमीचंद ने **तीर्थंकर** का एक जैन पत्रकारिता अंक प्रकाशित किया था जिसमें जैन पत्रकारिता के इतिहास पर स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का महत्वपूर्ण लेख सम्मिलित है, और विस्मृत पत्र **सनातन जैन** का परिचय स्व. श्री रमा कान्त जैन ने दिया था। **संवाद ६** में भी जैन पत्रकारों और पत्र-पत्रिकाओं के सम्बन्ध में परिचय प्रकाशित हुये थे। **सम्पर्क** के २०१० के अंक में भी अधिकांश जैन पत्र-पत्रिकाओं और पत्रकारों एवं मनीषी विद्वानों के सम्बन्ध में सूचना प्रकाशित की गई है।

अंग्रेजी का एक उल्लेखनीय पत्र **The Jaina Gazette** के नाम से १६०४ से १६५० तक प्रकाशित होता रहा। इसके सम्बन्ध में **शोधादर्श** १३, १४ और १५ में जानकारी प्रकाशित हुई है। अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित यह पत्र जैन समाज को

आधुनिक युग से जोड़ने और समाज में धार्मिक एवं प्रगतिशील जागरूकता का प्रसार करने में विशेष रूप से उपयोगी रहा क्योंकि ब्रिटिश शासन काल में प्रबुद्ध वर्ग अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ही शासन स्तर पर भी लाभान्वित हो सकता था। बैरिस्टर जे. एल. जैनी और बा. अजित प्रसाद, एडवोकेट, के प्रयत्नों से The Jain Young Men's Association की स्थापना हुई थी। पुनः बा. अजित प्रसाद, पं. जुगल किशोर मुख्तार, ब्र. सीतल प्रसाद तथा बैरिस्टर चम्पतराय जैन के प्रयत्नों से १९२३ में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के नाम से एक प्रगतिशील मंच का गठन किया गया था।

ब्र. सीतल प्रसाद जी को भ्रमवश **शीतल प्रसाद** लिखा जाता है। इस सम्बन्ध में **शोधादर्श** ५१ (नवम्बर, २००३) में हमने सीतल प्रसाद जी के स्वलिखित पत्रों और लेखन के आधार पर यह सूचित किया था कि उनका नाम सही रूप से **सीतल प्रसाद** लिखा जाये। वीर के सम्पादक-प्रकाशकों ने अपने मुख पृष्ठ पर तदनुरूप नाम का संशोधन कर लिया था। **वर्णी प्रवचन** के संपादक स्वर्गीय श्री सुमेरचंद जैन ने भी ब्र. जी का सही नाम प्रकाशित करना प्रारंभ कर दिया था।

शोधादर्श का प्रकाशन, इस बात को देखते हुये कि शोध को समर्पित कोई स्तरीय पत्रिका नहीं है और **जैन सिद्धांत भास्कर** व The Jaina Antiquary का प्रकाशन अवरुद्ध है, स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जी जैन ने फरवरी १९८६ में, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के सहयोग से, एक चातुर्मासिक, शोधपरक सम्प्रदाय व पंथ निरपेक्ष, पत्रिका के रूप में **शोधादर्श** का हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशन प्रारंभ किया था। नवम्बर २०१० तक इसके ७१ अंक प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. ज्योति प्रसाद जी के बाद उनके छोटे भाई स्व. श्री अजित प्रसाद जैन और पुत्रद्वय डॉ. शशि कान्त एवं स्व. श्री रमा कान्त जैन के सम्पादकत्व में इसका सातत्य बना रहा। रमा कान्त जी के २६-५-२००९ को स्मृतिशेष हो जाने पर डा. ज्योति प्रसाद जी के पौत्र श्री नलिन कान्त जैन, श्री संदीप कान्त जैन व श्री अंशु जैन और पौत्री डॉ. (श्रीमती) अलका अग्रवाल सम्पादन के दायित्व का निर्वहन कर रहे हैं।

विगत पांच दशकों में भारत में पत्रकारिता के स्तर का द्रुत गति से अवमूल्यन होता रहा है। पत्रकार अपने दायित्व से दूर होते जा रहे हैं। जन मानस को सचेत करने के बजाय वे व्यावसायिक बुद्धि से समाचारों का प्रसारण करते हैं जिसे Paid News के नाम से जाना जाता है। जैन समाज की पत्र-पत्रिकाएं साधुओं और सेठों

के दबाव में प्रायः समाज को दिग्भ्रमित करने का ही कार्य कर रही हैं। इस प्रवृत्ति को रोकने का कोई प्रयास समाज के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा नहीं किया जा रहा है, यह चिन्ता और क्षोभ का विषय है।

कुछ पत्रिकाएं ऐसी भी हैं जो व्यक्तिगत आक्षेप और लांछन का कार्य करती हैं। ऐसी ही एक पत्रिका पं. हेमन्त काला के सम्पादन में इन्दौर से **दिग्विजय** नाम से प्रकाशित होती है। कांजी पन्थ का सैद्धान्तिक दृष्टि से विरोध किया जाना भी अनेकांत सिद्धांत के अनुकूल नहीं है। अपनी आस्था व्यक्तिगत स्तर पर होनी चाहिए, उसका प्रयोग किसी की निन्दा, अपमान या अवमानना के लिए किया जाना किसी भी प्रकार उचित नहीं है। हाल ही में **धर्ममंगल का मायाजाल** शीर्षक से ११२ पृष्ठीय पत्रिका प्राप्त हुई है जिसमें **धर्ममंगल** की वयोवृद्ध सम्पादिका श्रीमती लीलावती जैन के सम्बन्ध में अनर्गल प्रलाप किया गया है और अन्य विद्वानों यथा डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल के प्रति भी अवमानना सूचक टिप्पणी की गई है। इस प्रकार की पत्रकारिता और लेखन को समाज के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा हतोत्साहित किया जाना अपेक्षित है। हमारा आग्रह है कि **दिशाबोध** के स्वतंत्र विचारप्रिय विद्वान संपादक अपनी पत्रिका के माध्यम से जैन समाज के पत्रकार वर्ग को उद्बोधित करने का प्रयास भी करें।

धर्ममंगल - सं. श्रीमती लीलावती जैन, १ सलिल अपार्टमेंट, प्लाट नं. ५७, सानेवाड़ी, औंध, पुणे-४११००७

धर्ममंगल का २५वें वर्ष का १२वां अंक फरवरी २०११ इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है कि इसमें श्री कांतिलाल शामलाल छाबड़ा के २२-१२-२०१० को हुये निधन से श्रीमती लीलावती जैन के जीवन में ६० साल के वैवाहिक जीवन के बाद जो एक शून्यता आ गई है, अपनी इस मनोव्यथा को उन्होंने बहुत ही मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। विगत २५ वर्षों से अपने पति की प्रेरणा से वे **धर्ममंगल** का संपादन-प्रकाशन करती आ रही हैं जिसमें उन्होंने समाज में फैली साधु-मूढ़ता और सामाजिक कुरीतियों के सम्बन्ध में निर्भीकता से अपने विचार प्रकाशित किये। कांतिलाल जी का मृत्युपत्र भी इसमें प्रकाशित है जो उनके स्वतंत्र विचारों का द्योतक है।

कांतिलाल और लीलावती के दाम्पत्य जीवन की जो छवि दीख पड़ती है वह प्रेरणास्पद है। लीलावती जी अब स्वयं भी जीवन के उस पड़ाव पर पहुंच गई हैं जब व्यक्ति शनैः-शनैः संसार से उदासीन होता जाता है। इस त्रासदी के क्षणों में हमारी उनके प्रति पूर्ण संवेदना और सहानुभूति है।

दिव्य देशना – प्र. आचार्य आदिसागर अंकलीकर विद्यालय, २५ दवग्रान स्ट्रीट, इटावा

महाराष्ट्र प्रदेश के सांगली जिले में, अंकली ग्राम में आचार्य श्री आदि सागर का जन्म १८६६ ई. में हुआ था। १९१३ में उन्होंने मुनि दीक्षा धारण की और १९१६ में उनको चारित्र चक्रवर्ती पद दिया गया। १९४३ में उन्होंने नश्वर शरीर का त्याग किया। उनके ११२ प्रवचनांशों का संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। यह प्रवचनांश अंग्रेजी, हिन्दी और मराठी भाषा में दिये गये हैं। पहला प्रवचन ''मौनम् सर्वार्थ साधनम्'' है।

इस गन्थ का प्रथम संस्करण १९९३ में आदिसागर अंकलीकर महाराज के तृतीय पट्टाधीश आचार्य सन्मतिसागर और गणिनी आर्यिका विजयमती माता जी के मार्गदर्शन में प्रकाशित हुआ था। यह इसका चतुर्थ संस्करण है। इसकी प्रस्तावना पं. श्रेयांश कुमार जैन, भूतपूर्व प्रवक्ता, हिन्दू इण्टर कॉलेज, कीरतपुर (बिजनौर) द्वारा लिखी गई है और पुरोवाक श्री अनूपचंद जैन एडवोकेट, फिरोजाबाद, द्वारा लिखा गया है।

दर्शन का साक्षी : सं. डॉ. हीरालाल श्रीमाली, राष्ट्रीय अणुव्रत शिक्षक संसद, विश्व शांति निलयम्, पो.बा. २६, राजसमन्द-३१३३२४; दिसम्बर २००८; पृ. २१६

डॉ. हीरालाल श्रीमाली (जन्म ८-१२-१९३५) द्वारा विगत ६ दशक में लिखित एवं प्रकाशित साहित्य का एक समालेखन इस पुस्तक में संग्रहीत किया गया है। श्रीमाली जी की विभिन्न कृतियों पर विद्वानों के समीक्षात्मक लेखों का इसमें संकलन है। **शोधादर्श** ५६ में उनकी पुस्तकों का परिचय श्री रमा कान्त जैन द्वारा दिया गया था। उनके साहित्य के सम्बन्ध में हमने भी यह विचार व्यक्त किये थे कि ''आज के आपा-धापी के युग में जब मनु की सन्तान 'मनुष्य' और आदम की औलाद 'आदमी' इन्सान न बनकर हैवान बन रहे हैं और बलात्कार, आतंकवाद, अलगाववाद की चिंगारी फूंक रहे हैं, ऐसे समय में आपकी लेखनी बहुत ही उपयोगी और रचनात्मक कार्य कर रही है।''

श्रीमाली जी तेरापंथी आचार्य तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ के अणुव्रत आन्दोलन से सम्बन्धित रहे हैं। उनका जीवन संघर्षशील रहा। संत साहित्य पर उन्होंने शोध कार्य किया। शिक्षा विभाग में वह कार्यरत रहे। उनका साहित्य संस्मरणात्मक भी है, जिससे उनके व्यक्तित्व के विविध पक्षों का परिचय प्राप्त होता है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने

स्वयं ही अपने लेखन की समीक्षाएं संकलित की हैं, जो उनके साहित्यिक कृतित्व का समुचित परिचय प्रदान करती हैं। हमारी सद्भावना है कि वह अपनी रचना-धर्मिता को बनाये रखें और स्वस्थ एवं दीर्घायु हों।

अक्षराभिषेक : सं. श्री अनूपचंद जैन एडवोकेट; प्र. श्रुतसेवा निधि न्यास, १०४, नई बस्ती, फिरोजाबाद-२८३२०३; ९ जनवरी २०११

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन (जन्म ३१-१२-१९३३), पूर्व प्राचार्य, श्री पी.डी. जैन इण्टर कॉलेज, फिरोजाबाद, द्वारा २००६ में श्रुतसेवा निधि न्यास की स्थापना इस भावना से की गई थी कि २००५ में इन्दौर से जो २५०००/- रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ था और २००६ में हस्तिनापुर में १००,०००/- का पुरस्कार प्राप्त हुआ था उसमें अपनी ओर से २५०००/- की राशि और मिलाकर १,५०,०००/- की राशि से फिरोजाबाद में कोई सेवा कार्य किया जाये। इसी भावना की फलश्रुति में **श्रुतसेवा निधि न्यास** की स्थापना ३ अक्टूबर २००६ को हुई। ७ जनवरी को प्रथम समारोह हुआ, जिसमें श्री चन्द्रपाल शर्मा 'शीलेश' को मातृ-वंदना पुरस्कार से सम्मानित किया गया और उनकी कृति **दोहों का गांव** का लोकार्पण किया गया। शिक्षा सेवी श्री प्रेम कुमार जैन को सरस्वती सम्मान से अलंकृत किया गया। पुनः ४ नवम्बर २००७ को भी एक सम्मान समारोह किया गया, जिसमें उत्कृष्ट चिकित्सा सेवाओं के लिये डॉ. अपूर्व चतुर्वेदी और डॉ. मनोज चतुर्वेदी का अभिनन्दन किया गया। पुनः ८ दिसम्बर को निर्धन छात्र-छात्राओं को और असहाय विधवा सेविकाओं को वस्त्र प्रदान किये गये।

६ जनवरी २००८ को तृतीय अलंकरण समारोह का आयोजन किया गया और उसी वर्ष कुछ समाज-सेवा के कार्य भी किये गये जिनमें नगरपालिका द्वारा निर्मित एक प्याउ के संचालन का दायित्व उल्लेखनीय है। २५ दिसम्बर को न्यास के संस्थापक श्री नरेन्द्र प्रकाश जी को विवेकानन्द सेवा संस्थान में नवनिर्मित सभागार का नाम 'प्रा. श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन सांस्कृतिक सभागार' रखकर सम्मानित किया गया।

४ जनवरी २००९ को चतुर्थ अक्षराभिषेक उत्सव का आयोजन किया गया। उसमें नगर के पांचों महाविद्यालयों में अध्ययनरत स्नातक स्तर के १४ योग्यतम छात्रों को प्रतिभा प्रोत्साहन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अन्य सम्मान और कुछ कृतियों का विमोचन यथावत हुआ। १० जनवरी २०१० को पंचम अक्षराभिषेक उत्सव सम्पन्न हुआ।

न्यास द्वारा प्रकाशित कृतियों और न्यास द्वारा किये जा रहे सेवा-सहायता कार्य का विवरण तथा न्यास के सदस्यों का परिचय इस स्मारिका में दिया गया है। ६ जनवरी २०११ को आयोजित अक्षराभिषेक उत्सव में सम्मानित महानुभावों का परिचय भी सम्मिलित किया गया है।

विगत ५ वर्षों में इस न्यास द्वारा साहित्य और समाज सेवा के क्षेत्र में जो कार्य किया गया उसके लिए न्यास के संस्थापक-अधिष्ठाता तथा उनके सहयोगी अभिनन्दनीय हैं।

विशिष्ट पत्रिकाएं :

वीर सेवा मंदिर, नई दिल्ली, से प्रकाशित **अनेकान्त** का अक्टूबर-दिसम्बर २०१० का अंक इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इसमें वीर सेवा मंदिर के संस्थापक पं. जुगल किशोर मुख्तार (२०-१२-१८७७ से २२-१२-१९६२) का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, से प्रकाशित **तुलसी प्रज्ञा** का जुलाई-दिसम्बर २०१० का अंक इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इसमें आचार्य महाप्रज्ञ के प्रकाशित साहित्य की सूची दी गई है।

सीतापुर से प्रकाशित **मानस चंदन** के अक्टूबर-दिसम्बर २०१० और जन-मार्च २०११ के अंक इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं कि इनमें डॉ. गणेशदत्त सारस्वत (१०-६-१९३६ से २६-१-२०१०) की साहित्य साधना और उनके व्यक्तित्व का विशद परिचय उनके मित्र और प्रशंसक साहित्य-मनीषियों द्वारा दिया गया है।

मंदसौर से अखिल भारतवर्षीय श्री राजेन्द्र जैन नवयुवक परिषद द्वारा प्रकाशित **शाश्वत धर्म** के दो विशिष्ट अंक हैं - अगस्त २०१० में प्रकाशित अंक में १९५९ से २००९ तक ५० वर्षों में परिषद के विभिन्न कार्यों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है, और फरवरी २०११ में प्रकाशित अंक में श्री विजय यतीन्द्र सूरीश्वर जी महाराज के जीवन की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला गया है।

- डॉ. शशि कान्त

जन्म जयंती पर पुनीत स्मरण

श्री अजित प्रसाद जैन की ६३वीं जन्म जयंती

दिनांक १ जनवरी २०११ को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, की साधारण सभा की बैठक श्री लूण करण नाहर जैन की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई।

समिति के संस्थापक-महामंत्री श्रद्धेय श्री अजित प्रसाद जैन के चित्र पर अध्यक्ष द्वारा माल्यार्पण तथा अन्य उपस्थित महानुभावों द्वारा पुष्पांजलि अर्पण कर उनके ६४ वें जन्मदिन पर उनका पुनीत स्मरण किया गया। श्री अंशु जैन 'अमर' ने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर विशद प्रकाश डाला और यह भावना व्यक्त की कि उनका जीवन समाज, परिवारजनों और समिति के सदस्यों को सदैव ही प्रेरणा प्रदान करता रहेगा। डॉ० विनय कुमार जैन ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए बताया कि वह निष्पक्ष, ईमानदार और निर्भीक पत्रकार थे। श्री राकेश जैन ने बताया कि सामाजिक कार्य करने हेतु वे ही उनके प्रेरक रहे थे और दिगम्बर जैन शिक्षा संस्थान तथा जैन मिलन में लाने का श्रेय उन्हीं को है। डॉ. शशि कान्त ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए बताया कि यद्यपि चाचाजी एक नैष्ठिक श्रावक थे, वे स्वतन्त्र चिन्तन का स्वागत करते थे और अंधविश्वास या धार्मिक कदाग्रह को प्रोत्साहित नहीं करते थे। अंत में श्री लूण करण नाहर जैन ने अपनी श्रद्धांजलि "जो **शोधादर्श** के प्रधान सम्पादक अजित प्रसाद जैन महान थे" अर्पित की और भजन "कभी प्यासे को पानी पिलाया नहीं, बाद अमृत पिलाने से क्या फायदा! कभी गिरते हुए को उठाया नहीं, बाद आंसू बहाने से क्या फायदा!!" प्रस्तुत कर वातावरण को रससिक्त किया।

इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की ९९वीं जन्म जयंती

दिनांक ६-२-२०११ को ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट के तत्ववाधान में इतिहास-मनीषी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की ९९वीं जन्म जयंती पर उनके पुनीत स्मरण हेतु बैठक का आयोजन किया गया। उनके चित्र पर माल्यार्पण और पुष्पांजलि के पश्चात् उनकी रचनाओं **वीतराग स्वरूपम्** और **जय महावीर नमो** का सामूहिक पाठ किया गया तथा उनको प्रिय रहे **महावीराष्टक** का पाठ भी किया गया।

न्यास-अध्यक्ष डॉ. शशि कान्त ने बताया कि यह डॉ. साहब का जन्म शताब्दी वर्ष है। इस वर्ष में उनकी स्मृति को चिर स्थायी करने के लिए कुछ विशेष कार्य सम्पादित किया जाना अभिप्रेत है। न्यास मण्डल की यह इच्छा है कि उनके नाम से उनको प्रिय रहे इतिहास और संस्कृति विषय में शोधकार्यरत विद्वानों को सम्मानित किया जाये, उनके लेखन का सूचीकरण और अप्रकाशित कृतियों का प्रकाशन किया

जाये, उनके प्रकाशित महत्वपूर्ण लेखों को वर्गीकृत कर इनका संकलन प्रकाशित किया जाये तथा समापन समारोह ६-२-२०१२ को आयोजित किया जाये। यह विचार भी किया गया कि डॉ. साहब के प्रशंसकों और उनके विषय के विद्वानों को सम्मिलित करते हुये एक समिति का गठन किया जाये और समिति के सदस्यों का इस आयोजन में सहयोग प्राप्त किया जाये। आयोजन की रूपरेखा न्यास मण्डल के सदस्य बना रहे हैं। न्यास-सचिव श्री सन्दीप कान्त जैन ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

श्री रमा कान्त जैन की ७५वीं जन्म जयंती

दिनांक १०-२-२०११ को श्री रमा कान्त जैन की ७५वीं जयंती पर स्मृति-गोष्ठी का आयोजन ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में किया गया। श्री लूणकरण नाहर जैन ने अध्यक्षता की और श्री नलिन कान्त जैन ने संचालन किया। वरिष्ठ पत्रकार श्री विष्णुदत्त शर्मा, हास्य कवि श्री अनिल बांके, श्री हरिहर स्वरूप, श्री राजीव जैन और श्री अंशु जैन 'अमर' ने श्री रमा कान्त जैन के प्रति अपने संस्मरणात्मक भावभीने उद्‌गार प्रकट किये। कु. पलक जैन ने अपने बाबा जी के प्रति अपनी बाल सुलभ कोमल भावनाओं को एक गीत के माध्यम से प्रस्तुत किया। श्रीमती मंजरी जैन ने भी अपने देवर के प्रति पद्य में स्मरणांजलि प्रस्तुत की। श्री लूणकरण नाहर जैन ने अपने उद्‌गार प्रकट करते हुये बताया कि श्री रमा कान्त जी एक मनस्वी साहित्यकार और निर्भीक पत्रकार थे।

- नलिन कान्त जैन

आभार

श्री दर्शन लाड़, मुम्बई, ने **शोधादर्श** को ५००/- रुपये भेंट किये।

डॉ. (श्रीमती) ज्योति जैन, खतौली, ने अपनी माताजी श्रीमती चमेली बाई भण्डारी की पुनीत स्मृति में १५१/- रुपये भेंट किये।

श्रीमती आशा जैन ने अपनी सुपुत्री सौ. इन्दु कान्त जैन के चि. महेश चंद जैन के साथ परिणय की रजत-जयंती (२६-१२-२०१०) पर रु. २००/- और अपने पति श्री रमा कान्त जैन की ७५वीं जन्म जयन्ती (१०-२-२०११) पर उनकी पुनीत स्मृति में रु. २०१/- भेंट किये।

डॉ. शशि कान्त ने अपने चाचा जी श्री अजित प्रसाद जैन की ६३वीं जन्म जयंती (१-१-२०११) और अपने पिता जी डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की ६६वीं जन्म जयंती (६-२-२०११) पर उनकी पुनीत स्मृति में १०१/- रुपये भेंट किये।

श्री अमृत जैन सिंघई और सौ. रेखा जैन, रायपुर, ने अपने सुपुत्र चि. गौरव के सौ. रिचिता के साथ परिणय पर १००/- रुपये भेंट किये।

श्री अवनीश गर्ग और श्रीमती रेखा गर्ग लखनऊ ने **शोधादर्श** को रु. १००/- और शोध पुस्तकालय को रु. १००/- भेंट किये।

श्री कैलाश नारायण टन्डन, कानपुर, ने अपनी पत्नी श्रीमती शकुन्तला टण्डन की पुनीत स्मृति में रु. ५१/- भेंट किये।

- सम्पादक मंडल

स्मृतिशेष पिता जी श्री रमा कान्त जैन

- श्री अंशु जैन 'अमर'

शोधादर्श का मार्च का यह अंक ऐसे समय प्रकाशित हो रहा है जबकि **शोधादर्श** के चार स्तंभों में से एक 'सम्पादक सरताज' पूज्य पिता जी स्व. श्री रमा कान्त जैन जी के सांसारिक जीवन के दोनों छोर - जन्म व मृत्यु का मिलन स्थापित हो रहा है। १० फरवरी २०११ को पिता जी का अमृतोत्सव वर्ष पूर्ण हो रहा है और जब तक यह अंक आप लोगों के हाथों में पहुँचेगा बस कुछ ही अन्तराल पर २६ मई २०११ को स्मृतिशेष पिता जी की दूसरी पुण्य-तिथि भी आ जाएगी।

एक सामान्य व्यक्ति के जीवन का भी अमृत-वर्ष महत्वपूर्ण होता है और फिर अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से एक मुकाम हासिल करने वाले पूज्य पिता जी के जीवन के अमृतवर्ष का तो विशेष महत्व है। यद्यपि दुर्भाग्यवश यह अवसर उनके साथ नहीं मना पाने का हम सभी को हार्दिक दुःख अवश्य है, तथापि उनके आचरण व कृतित्व आज भी हमारे साथ हैं और हर पल उनकी उपस्थिति का अहसास कराते हैं।

एक धर्मनिष्ठ जैन परिवार में जन्मे पिता जी ने जीवन-पर्यन्त जैन धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों अनेकान्तवाद, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह व ब्रह्मचर्य को मात्र लेखनी में नहीं, वरन् आचरण में उतारा।

मुझे याद नहीं आता कि कभी भी पिता जी का किसी से किसी विषय पर विवाद या झगड़ा हुआ हो। हाँ, वह स्वस्थ चर्चा के पक्षधर जरूर थे। अनेक अवसरों पर सामने वाले की बात को मान देकर विनम्रतापूर्वक वास्तविक जीत हासिल कर लेते थे। वे अक्सर कहते थे कि 'बेटा, सामने वाला जिस नजरिये से अपनी बात कह रहा है, शायद हम उसे देख-समझ नहीं पा रहे हैं।' उनके इसी विनम्र अनेकान्तिक दृष्टिकोण ने उन्हें निर्विवाद व सर्व-स्वीकार्य बना दिया था।

पिता जी को मैने कभी-भी असत्य बोलते अथवा उसका पक्ष लेते नहीं देखा। वे वास्तविक हिंसा तो दूर भाव हिंसा अथवा मानसिक हिंसा के भी घोर विरोधी थे। दूसरों की वस्तु छीनना या उस पर अधिकार तो क्या उन्हें अपनी वस्तु पर भी अधिकार जताना नहीं आता था। जीवन-भर उनकी सोच भौतिकतावादी अथवा फैशन परस्त नहीं रही। उनका रहन-सहन, खान-पान सब कुछ अत्यंत सादा था। घर की दाल-रोटी, सिर्फ दो-तीन जोड़ी पैंट-शर्ट व बनियान-पायजामा से पूरा साल गुजार देते

थे। कभी आलीशान मकान वाहन आदि की लालसा उन्हें मोहपाश में न बांध सकी। इसीलिए अन्य सामाजिक कुरीतियाँ भी उनका स्पर्श तक नहीं कर सकीं।

इन सबके मूल में उनमें कूट-कूट कर भरा 'आत्म-संतुष्टि' का वह भाव था, जिसका सतत् अभ्यास वे जीवन-पर्यंत करते रहे। फल की चिन्ता छोड़कर अपना कार्य करते रहने और प्राप्त प्रतिफल से संतुष्ट रहने की शिक्षा अपने आचरण के माध्यम से सदैव हम लोगों को वे देते रहे। पारिवारिक, सामाजिक, छात्र-जीवन, सेवा-काल, लेखन-काल सर्वत्र आपने सकारात्मक सोच के इस मूल मंत्र 'आत्म-संतुष्टि' का सफल प्रयोग किया। अनुभवों के आधार पर जून १६६६ में प्रकाशित उनकी पुस्तक **"गिलास आधा भरा है"** उनके इसी दृष्टिकोण का उत्कृष्ट उदाहरण है। अपनी इसी अनेकान्तिक व संतोषी वृत्ति के कारण पूज्य पिता जी ने एक ऐसे व्यक्तित्व और कृतित्व का निर्माण कर दिया, जिनके सम्मुख आज समस्त सारस्वत जगत उन्हें नमन करता है। हम लोग भी यदि उनके इसी अनेकान्तिक एवं आत्म संतुष्टि के भाव सहित सकारात्मक दृष्टिकोण को व्यवहार में अपना सके, तो शायद यही उनके जीवन के अमृतोत्सव व द्वितीय पुण्य-तिथि के मिलन अवसर पर उनके प्रति सच्ची श्रद्धाँजलि होगी।

अभिनन्दन

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के टोंक में सम्पन्न अधिवेशन में क्षुल्लक गणेश प्रसाद वर्णी स्मृति पुरस्कार डॉ० श्रेयांस कुमार जैन (बड़ौत) एवं डॉ. कपूर चंद जैन (खतौली) को, पं. गोपाल दास बरैया स्मृति पुरस्कार डॉ. कमलेश कुमार जैन (जयपुर) एवं पं. लालचन्द जैन (गंज बासौदा) को, पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य स्मृति पुरस्कार डॉ. शीतल चन्द जैन (जयपुर) को और आचार्य ज्ञान सागर पुरस्कार पं. अभय कुमार जैन (बीना) को प्रदान किये गये।

बुरहानपुर में अष्टान्हिका पर्व के अवसर पर डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' को 'सरस्वती-पुत्र' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

२८ नवम्बर २०१० को बोरगांव (जिला बेलगांव) में दक्षिण भारत जैन सभा द्वारा अपने ६२वें अधिवेशन में डॉ. कमल कुमार जैन, एसोसियेट एडिटर, प्राकृत डिक्सनरी प्रोजेक्ट, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्सटीट्यूट, पुणे, को 'आचार्य कुन्द-कुन्द प्राकृत ग्रन्थ संशोधन व लेखन पुरस्कार' प्रदान किया गया।

२ दिसम्बर को इन्दौर के प्रो. प्रेमसुमन जैन को जैन विद्या के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के लिये २००६ के कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

कांग्रेस के १२५वें स्थापना दिवस एवं ८३वें महा-अधिवेशन में बुराडी, नई दिल्ली, में १६ दिसम्बर को मध्य प्रदेश से पूर्व सांसद श्री डालचन्द जैन को प्रधानमंत्री एवं कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के रूप में सम्मानित किया गया। ८३-वर्षीय डालचन्द जी म. प्र. से अकेले सम्मानित स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे। वह सन् १६४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन से ही स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लेते रहे। १६६३ में सागर नगर पालिका के अध्यक्ष निर्वाचित हुये। १६६७ और १६७२ में मध्य प्रदेश विधान सभा के सदस्य रहे और १६८४ में दमोह-पन्ना संसदीय क्षेत्र से लोक सभा के सदस्य निर्वाचित हुये। साथ ही, जैन समाज की विभिन्न संस्थाओं में सक्रिय योगदान करते रहे।

२६ दिसम्बर को डॉ. आदित्य प्रचण्डिया द्वारा अपने पिता श्री की पुण्य स्मृति में 'डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया स्मृति साहित्य वारिधि सम्मान' प्रो. हरि मोहन को अखिल भारतीय साहित्य कला मंच, मुरादाबाद में प्रदान किया गया।

२६ दिसम्बर को नई दिल्ली के श्री लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ द्वारा त्रयोदश दीक्षान्त समारोह में श्री दयानन्द भार्गव को जैन दर्शन और वेद विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण अवदान के लिये 'महोपाध्याय' की मानद उपाधि से विभूषित किया गया।

श्रुत संवर्धन संस्थान मेरठ द्वारा २७ दिसम्बर को कर्नाटक जैन भवन, बंगलूरू में आचार्य शांति सागर छाणी स्मृति श्रुत संवर्धन पुरस्कार प्रोफेसर एस.पी. पाटिल

(सांगली) को, आचार्य श्री सूर्यसागर स्मृति श्रुत संवर्धन पुरस्कार न्यायमूर्ति श्री अभय कुमार गोहिल्ल (भोपाल) को, आचार्य श्री विमल सागर भिण्ड स्मृति श्रुत संवर्धन पुरस्कार, पत्रकारिता के लिए, श्री रमेश कासलीवाल (इन्दौर) को, आचार्य श्री सुमति सागर स्मृति श्रुत संवर्धन पुरस्कार, नाभिकीय भौतिकी में शोध हेतु, प्रोफेसर अशोक कुमार जैन (आई.आई.टी., रुड़की) को, मुनि श्री वर्धमान सागर स्मृति श्रुत संवर्धन पुरस्कार डॉ. डी. सी. जैन (नई दिल्ली) को और सराक पुरस्कार डॉ. बबिता जैन, जयपुर, को प्रदान किये गये।

जैन विश्व-भारती, लाडनूं के संस्कृत एवं प्राकृत विभाग के एसोसियेट प्रोफेसर डॉ. जिनेन्द्र जैन को विक्रम वि.वि. उज्जैन में आयोजित कालिदास समारोह में 'कालिदास के संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत भाषा का वैशिष्ट्य' विषयक शोध लेख पर 'विक्रम कालिदास राष्ट्रीय पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

१ जनवरी, २०११ को ग्राम साबला, त. आसपुर, जिला डूंगरपुर में आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज की १६वीं पुण्यतिथि पर आयोजित समारोह में विमल विद्या श्रुत संस्थान की ओर से श्री अनूपचंद जैन, फिरोजाबाद को पुरस्कृत एवं 'वाग्मी प्रवक्ता' के मानद विरुद से विभूषित किया गया। राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज की प्रेरणा से प्रवर्तित स्वं पं. राजकुमार शास्त्री व डॉ. रमेशचंद जैन धर्मार्थ ट्रस्ट, निवाई की ओर से डॉ. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ को पुरस्कृत एवं 'अनिसंधित्सु सारस्वत' के मानद विरुद से विभूषित किया गया।

३ जनवरी को ८४ वर्षीय डॉ. त्रिलोकचन्द कोठारी को आगरा विश्वविद्यालय द्वारा उनके जैन पुराण साहित्य विषयक शोध प्रबन्ध पर डी. लिट् की उपाधि प्रदान की गई।

६ जनवरी को फिरोजाबाद में श्रुतसेवा निधि न्यास द्वारा श्रीमती इन्दु कान्त जैन को 'श्रुतसेविका' की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। पं. सुरेन्द्र कुमार जैन को 'जिनागमोपासक' की उपाधि से और श्री पुष्पराज जैन को 'समाज विभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया गया।

हमारी समिति के सदस्य डॉ. ओम प्रकाश अग्रवाल जैन को, उनके पुरातत्व संरक्षण में महती योगदान के लिए गणतंत्र दिवस पर 'पद्मश्री' राष्ट्रीय अलंकरण से सम्मानित किया गया।

गांधीवादी विचारक श्री लख्मीचन्द जैन को मरणोपरांत 'पद्म विभूषण' के अलंकरण से सम्मानित करने की घोषणा की गई परन्तु उनके परिवारजनों ने उसे स्वीकार करने से इंकार कर दिया क्योंकि वह स्वयं राजकीय सम्मान स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। उनका निधन ८५ वर्ष की वय में १४ नवम्बर २०१० को हो गया। वह अर्थ व्यवस्था पर प्रशासकीय नियंत्रण के घोर विरोधी थे।

गणतंत्र दिवस पर दमोह में डॉ. शैलार स्मृति न्यास द्वारा डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' (निदेशक, संस्कृत, प्राकृत और जैन विद्या अनुसंधान केन्द्र, दमोह) को उच्च शिक्षा, साहित्य और समाजसेवा के क्षेत्र में अप्रतिम योगदान के लिये एक भव्य विशेष समारोह में सम्मानित किया गया। दमोह नगरपालिका परिषद् के अध्यक्ष पं. मनु मिश्रा ने अध्यक्षता की और मध्यप्रदेश शासन के मंत्री जयन्त मलैया मुख्य अतिथि थे।

श्री अमित जैन को 'भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में उत्तर प्रदेश की जैन समाज का योगदान' विषय पर चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय मेरठ द्वारा १२ फरवरी को पी-एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई।

२१-२२ फरवरी को ताइवान की राजधानी तेपेई में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस में डॉ. अनेकान्त जैन, जैन दर्शन के सहायक आचार्य, श्री लालबहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली ने Civilization from Discord to Reconciliation, with special reference to Jain theory of Anekanta पर शोध पत्र प्रस्तुत किया।

भारतीय रेलवे सेवा के अधिकारी श्री राजीव कान्त जैन आर. डी. एस. ओ. में निदेशक के पद से पदोन्नत होकर पुणे में रेलवे विकास निगम लि. के जनरल मैनेजर नियुक्त किये गये।

कु. स्निग्धा जैन (सुपुत्री डॉ. विनय कुमार जैन एवं डॉ. नीलम जैन, जैन नर्सिंग होम, मुंशी गंज, बाराबंकी) ने आल इंडिया इंस्टीट्यूट आफ मेडिकल साइंसेज, नई दिल्ली की एम. बी. बी. एस परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर यूनिवर्सिटी स्वर्ण पदक का सम्मान अर्जित किया।

'दिव्य देशना' की सम्पादक डा. ममता जैन को शब्द प्रवाह संस्था पुणे द्वारा महिला दिवस पर महिला सशक्तिकरण एवं कामकाजी महिलाओं को 'घर कैसे संभाले' के सफल अभियान के लिये सम्मानित किया गया।

हिंदी साहित्य सम्मेलन का ३ दिवसीय अधिवेशन हरिद्वार में दिनांक २६ से ३१ मार्च २०११ को हरिद्वार में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में दो तमिलभाषी विद्वानों का विशेष रूप से सम्मान किया गया क्योंकि इन विद्वानों ने तमिल भाषा और साहित्य के साथ ही हिन्दी भाषा और साहित्य के लिये भी समर्पित रूप से कार्य किया। ३१ मार्च को इन दोनों विद्वानों को सम्मेलन की सर्वोच्च उपाधि 'साहित्य वाचस्पति' प्रदान कर सम्मानित किया गया। यह दो विद्वान श्री आर. शोरीराजन (जन्म ११-१२-१९२७) और डॉ. नागेश्वर सुन्दरम (जन्म २८-४-१९३०) हैं। डॉ. सुन्दरम **शोधादर्श** के पाठक और लेखक भी हैं। **शोधादर्श ६९** में उनका लेख 'तमिल संघोत्तरकाल में जैन काव्य' प्रकाशित है।

उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी यशवृद्धि के लिए **शोधादर्श** परिवार अभिनन्दन करता है।

शोक संवेदन

पण्डित श्री गोपाल दिगम्बर जैन सिद्धान्त संस्कृत विद्यालय, मुरैना, के पूर्व प्राचार्य श्री बालमुकुन्द जी शास्त्री का ८४ वर्ष की वय में शांत परिणामों के साथ १७ दिसम्बर २०१० को देहावसान हो गया।

२० दिसम्बर को वाराणसी में प्रमुख गांधीवादी विचारक श्री शरद कुमार साधक का ७६ वर्ष की अवस्था में हृदयाघात के कारण निधन हो गया।

धर्ममंगल की सम्पादिका श्रीमती लीलावती जैन के पति ८० वर्षीय श्री कांतिलाल शामलाल छाबड़ा का २२ दिसम्बर को पुणे में निधन हो गया। वह एक धर्मनिष्ठ श्रावक थे। कैन्सर के असाध्य रोग से पीड़ित होने के कारण अन्तिम दिनों में उनकी यातनायें बेहद बढ़ गयी थीं, तथापि अन्त समय तक वह अत्यंत धैर्य और शांति के साथ पीड़ा को सहते रहे। उनकी इच्छानुसार उनका नेत्रदान कर दिया गया और दाह संस्कार विद्युतदाहिनी में किया गया।

डॉ. (श्रीमती) ज्योति जैन, धर्मपत्नी डॉ. कपूरचन्द जैन, खतौली, की माता श्रीमती चमेली बाई भण्डारी (धर्मपत्नी स्व. श्री भागचन्द भण्डारी) का सागर में २७ दिसम्बर को देह परिवर्तन हो गया। वह एक धर्मनिष्ठ सुश्राविका थीं और अन्त समय भी धार्मिक विनती स्त्रोत आदि सुनती रहीं।

२६ जनवरी २०११ को ६३ वर्षीय कविवर पंडित राजमल पवैया का भोपाल में निधन हो गया। वह एक नैष्ठिक श्रावक थे और अन्त समय तक अपने इष्ट की उपासना में भक्तिपूर्ण काव्य रचनायें करते रहे।

हमारी समिति के सदस्य श्री हंसराज जैन की माता ८५ वर्षीय श्रीमती शकुन्तला देवी जैन (पत्नी स्व. श्री तारा चन्द जैन) का लखनऊ में ८ मार्च को निधन हो गया। वह एक धर्मपरायण महिला थीं।

उपरोक्त सभी महानुभावों के प्रति शोधादर्श परिवार अपनी भावभीनी श्रद्धांजली अर्पित करता है, दिवंगत आत्माओं की चिरशांति और सद्गति के लिए प्रार्थना करता है और शोक संतप्त परिवारजनों एवं मित्रवर्ग के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

समाचार विविधा

प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली

संस्थान में आचार्य कुन्दकुन्द व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया। अध्यक्षता प्रो. रवीन्द्र कुमार रवि, संकायाध्यक्ष, मानविकी संकाय, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, ने की। संस्थान के निदेशक डॉ. ऋषभचन्द्र जैन ने व्याख्यानमाला का विषय परिचय कराते हुये कहा कि आचार्य कुन्दकुन्द जैन परम्परा के ऐसे पहले आचार्य हैं जिनका स्मरण भगवान महावीर और गौतम गणधर के साथ किया जाता है। दृष्टिवाद के अन्तर्गत परिगणित **पुव्वागम** जिसे विलुप्त मान लिया गया है, से विषय-वस्तु ग्रहण कर आचार्य कुन्दकुन्द ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी।

मुख्य वक्ता के रूप में प्रो. शीतलचन्द्र जैन, संकायाध्यक्ष, श्रमण विद्या संकाय, राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर, ने कहा कि आचार्य कुन्दकुन्द की प्रथम रचना **समयसार** है। जैन कर्म सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को ४८ भव तक अपने कर्मों के फल की प्राप्ति होती है, जबकि वैदिक संस्कृति में ६६ भव तक फल की प्राप्ति होती है। प्रो. राजीवरंजन ने आचार्य कुन्दकुन्द के दार्शनिक वैशिष्ट्य के बारे में बताया। अध्यक्षीय वक्तव्य में प्रो. रवीन्द्र कुमार रवि ने कहा कि आचार्य कुन्दकुन्द के योगदान से यदि हम थोड़ा भी ग्रहण कर सकें तो जीवन सार्थक हो जायेगा।

उज्जैन में जैन पुरातत्व संग्रहालय

श्री सत्यंधर कुमार सेठी, उज्जैन, द्वारा ई.संन् १९५०/६० के आसपास श्री दिगम्बर जैन मंदिर जयसिंगपुरा में जैन धर्म व संस्कृति के प्राचीन गौरवशाली अवशेषों को प्राप्त कर या हस्तगत कर मंदिर परिसर में एक हॉल में लाकर सुरक्षित कर दिया गया था। मालवा प्रान्तिक दिगम्बर जैन सभा के अध्यक्ष श्री प्रदीप कुमार कासलीवाल (इन्दौर) एवं महामंत्री श्री भागचन्द काला (बड़नगर) के अथक प्रयासों के फलस्वरूप भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने इस संग्रहालय की मौलिकता एवं महत्ता का अहसास कर करीब ६० लाख रुपये प्रदान करने की स्वीकृति दी जिसमें से शीघ्र कार्य प्रारम्भ हेतु रुपये ३० लाख मालवा प्रान्तिक दिगम्बर जैन सभा के खाते में जमा भी करवा दिये। सभा को स्वयं पन्द्रह लाख रुपये एकत्रित करने पर तथा कार्य प्रगति का जायजा लेने पर शेष ३० लाख रुपये भी प्राप्त हो जायेंगे।

वर्तमान हॉल जीर्णशीर्ण हो गया है और अब छोटा भी पड़ने लगा है। अतः इसी प्रांगण में निर्मित नये हॉल के ऊपर इतना ही बड़ा करीब १२५ फुट लम्बा और २५ फुट चौड़ा हॉल का निर्माण संग्रहालय के रूप में करने का निर्णय किया गया और १९ जनवरी २०११ को स्व. श्री सत्यंधर कुमार सेठी के द्वितीय सुपुत्र श्री रजनीश कुमार सेठी के करकमलों से इस हॉल के निर्माण हेतु भूमि पूजन करवाया गया।

अक्षराभिषेकोत्सव २०११

६ जनवरी, २०११, को धर्म, साहित्य और संस्कृति के लिए समर्पित फिरोजाबाद की साहित्यिक संस्था **श्रुतसेवा निधि न्यास** द्वारा अपने छठवें वार्षिक समारोह **अक्षराभिषेकोत्सव** के दौरान समाज के अग्रणी व्यक्तियों का सम्मान समारोह श्री रामचन्द्र पालीवाल ऑडीटोरियम में आयोजित किया गया। कार्यक्रम का शुभारम्भ मुख्य अतिथि श्री सुरेशचन्द्र जैन, कुलाधिपति, तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद, ने माँ सरस्वती के चित्र पर दीप प्रज्वलित कर किया। बृजराज सिंह इण्टर कॉलेज के छात्र-छात्राओं ने सरस्वती वंदना एवं स्वागत गीत की प्रस्तुति की।

कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री पुष्पराज जैन को 'समाज विभूषण' की मानद उपाधि से, नगर पालिका चेयरमैन श्री मनीष असीजा को 'सेवागुण-रत्नाकर' की मानद उपाधि से, नगर में मुंसिफी की स्थापना से लेकर नगर को जनपद घोषित किये जाने तक लम्बे जन आंदोलनों में सक्रिय रहे श्री प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी को 'प्रेमानन्द-मूर्ति' की उपाधि से, गत दस वर्षों से यू०पी० एजूकेशन बोर्ड से उत्तम अनुशासन और परीक्षाफल के लिये बृजराज सिंह इण्टर कॉलेज को 'ए' श्रेणी का प्रमाण पत्र प्राप्ति के श्रेयस इसके प्राचार्य श्री विश्वदीप सिंह को 'शिक्षालोक-भास्कर' की मानद उपाधि से, डॉ० श्री रमाशंकर को 'नेत्रव्याधि-विमोचन' उपाधि से, श्री आश्चर्यलाल नरूला को 'सेवा-संस्कार सुधाकर' की मानद उपाधि से, पं० सुरेन्द्र कुमार जैन को 'जिनागमोपासक' की मानद उपाधि से और श्रीमती इन्दु कान्त जैन को 'श्रुतसेविका' की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। श्री बालकृष्ण गुप्त को 'श्रुतधर-कण्ठाभरण' की उपाधि से, और प्रियम जैन, अंशुल जैन व पलाश अग्रवाल को उत्तम परीक्षा परिणाम के लिए सम्मानित किया गया। श्रीमती इन्दु कान्त जैन द्वारा लिखी **दर्द का रिश्ता**, श्री आश्चर्यलाल नरूला द्वारा लिखी **योग का आश्चर्य** व डॉ० श्री रामसिंह शर्मा द्वारा लिखी **गीता का दिव्य संदेश** का विमोचन भी किया गया।

अध्यक्षता कर रहे कन्नौज से आये प्रमुख उद्योगपति एवं समाज सेवी श्री पुष्पराज जैन ने संस्था के क्रियाकलापों की विस्तृत जानकारी होने पर प्रसन्नता व्यक्त की और संस्था द्वारा किये जा रहे कार्यों को देखते हुये उन्होंने संस्था को १ लाख ११ हजार रुपये देने की घोषणा की। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि चांसलर, तीर्थंकर महावीर यूनिवर्सिटी, मुरादाबाद, श्री सुरेशचन्द्र जैन ने कहा कि जनपद में ३०-४० हजार जैन समाज की आबादी में अगर आपसी गुटबंदी न हो तो यहां भी जैन विश्वविद्यालय खुल सकता है। कार्यक्रम का संचालन श्री अनूपचन्द जैन ने किया। कार्यक्रम में न्यास के अध्यक्ष प्रा. नरेन्द्र प्रकाश जैन और उनके सहयोगी गण एवं नगर के सभी वर्गों के गणमान्य नागरिक, उद्योगपति एवं समाज सेवी उपस्थित थे।

अखिल भारतीय श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक युवक महासंघ

अखिल भारतीय श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक युवक महासंघ का परिणामलक्षी ११वां राष्ट्रीय अधिवेशन उज्जैन में १८ एवं १९ दिसम्बर, २०१०, को सम्पन्न हुआ।

इस अधिवेशन की थीम थी 'पर्यावरण मैत्री : अल्पहिंसक जीवनशैली'। इस थीम पर कार्य करते हुए आयोजकों ने प्लास्टिक और पॉलीथीन की वस्तुओं से एक निश्चित दूरी बनाये रखी। अधिवेशन मंडप में भी फ्लैक्स के स्थान पर पूर्णतः खादी का उपयोग किया गया तथा बैनरों पर लिखावट के लिए रासायनिक स्याही या रंग के स्थान पर पूर्णतः प्राकृतिक वस्तुओं का उपयोग किया गया।

युवक महासंघ के संस्थापक राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री ललित नाहटा ने संगठन एवं युवक महासंघ के संदर्भ में अपने भावपूर्ण विचार रखते हुये कहा कि "अखिल भारतीय श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक युवक महासंघ संस्था नहीं अपितु एक राष्ट्रीय मंच है सभी स्थानीय श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक युवक महासंघों का। धार्मिक सिद्धान्तों व परम्पराओं पर टिप्पणी करने का कार्य हमारा नहीं है। हमें अपने गुरु भगवंतों व बड़े संघों के दिशा निर्देश में चलना है। अपनी-अपनी परम्पराओं का पालन करते हुए अन्य परम्पराओं को सम्मान दें। यह अनेकान्तवाद के सिद्धान्त को पालने का प्रथम सोपान है। .... हम अधिकारों के प्रति उदासीन व उत्तरदायित्व के प्रति सजग रहें। अहं का पूर्णतया त्याग करें। छोटों को स्नेह व प्रोत्साहन दें तो बड़ों का सम्मान करें।"

उद्‌घाटन सत्र के अध्यक्ष श्री चैतन्य कश्यप ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा २ अक्टूबर को अहिंसा दिवस घोषित किया गया है। युवक महासंघ प्रयास करे कि २ अक्टूबर को सत्याग्रह दिवस व महावीर जयन्ती को अहिंसा दिवस के रूप में स्थापित किया जाये।

दूसरे सत्र में 'आयुर्वेद और पर्यावरण' विषय पर पूना से पधारे प्रो. दिलीप गाडगिल का विशेष उद्‌बोधन हुआ। म.प्र. सरकार में प्रशासनिक अधिकारी श्री सुधीर कोचर ने युवकों को प्रशासनिक सेवा में आने का आह्वान करते हुये कहा कि इससे आप नीति निर्धारण में अपनी हिस्सेदारी सुनिश्चित कर सकते हैं।

दूसरे दिन जाने-माने सामाजिक कार्यकर्ता श्री अरुण कुमार पानी बाबा ने अहिंसक जीवन शैली और पर्यावरण पर अपने वक्तव्य में समस्त आर्यावर्त के मौसम का विश्लेषण करते हुये कहा कि ग्लोबल वार्मिंग को रोकने का सबसे सरल तरीका है कि देश की नदियों के प्रवाह को निरंतर बनाये रखा जाये।

महासंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री गौतम जैन ने नये पदाधिकारियों की घोषणा की, जिसमें श्री सुनील सिंघी को राष्ट्रीय अध्यक्ष, श्री नितिन दुगड़ को वरिष्ठ उपाध्यक्ष, श्री हरेश भाई को राष्ट्रीय महामंत्री, श्री दिनेश दोशी को राष्ट्रीय कोषाध्यक्ष एवं श्री अशोक गजानन को राष्ट्रीय संगठन मंत्री मनोनीत किया गया।

श्रेष्ठ युवक रत्न सम्मान श्री दीपक जैन (दिल्ली) एवं युवक रत्न सम्मान श्री रजत मेहता (उज्जैन) को प्रदान किये गये।

चारित्र चक्रवर्ती शान्तिसागर महाराज के अवदान पर राष्ट्रीय कान्फ्रेंस

हटा (दमोह), म०प्र०, में कान्फ्रेंस का प्रारम्भ सम्पूर्ण पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव के माननीय प्रतिष्ठा-निर्देशक वाणीभूषण "अणुव्रती" पं० बाबूलाल जी टीकमगढ़ (म०प्र०) के द्वारा स्वस्तिवाचन एवं श्री वर्णी जैन पाठशाला दमोह के छात्र

हिमांशु और कु. रूपांसि के मंगलाचरण तथा संगीतकार राजीव और उनके साथियों के द्वारा प्रस्तुत संगीतमय स्तवन के साथ हुआ।

इस कान्फ्रेंस/समारोह के कुशल संयोजक तथा सफल संचालक मध्य प्रदेश शासन संस्कृत अकादमी भोपाल के पूर्व सचिव, प्रख्यात मूर्धन्य मनीषी प्रोफेसर डॉ० भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' (निदेशक, संस्कृत प्राकृत तथा जैन विद्या अनुसंधान केन्द्र, दमोह) थे। अध्यक्षता पं. खेमचन्द्र शास्त्री ने की। मुख्य अतिथि साहित्य कुमुदचन्द्र श्री सुरेश 'सरल' थे और विशिष्ट अतिथि, डॉ. देवकुमार जैन, रायपुर (छत्तीसगढ़), मध्यप्रदेश विधानसभा में हटा क्षेत्र की विधायक श्रीमती उमादेवी खटीक, और श्री सुनील भाई जी, टीकमगढ़, थे। स्वागताध्यक्ष सुश्री मीना जैन, जबलपुर, और उपसंयोजक श्रीमती सरोज सांधेलीय थी।

डॉ.पन्ना लाल जैन की जन्म शताब्दी

नव-नवोन्मेशशालिनी प्रतिभा सम्पन्न, प्राचीन वाड्.मय और भाषा शास्त्र के उद्भट मनीषी, मौलिक ग्रंथों के रचयिता, शताधिक ग्रंथों के लब्ध प्रतिष्ठित सम्पादक, अनुवादक, टीकाकार एवं शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान के लिये राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित, राष्ट्रीय स्तर पर अनेकों प्रशस्तियों, अलंकरणों एवं पुरस्कारों से विभूषित साहित्याचार्य डॉ० पं० पन्नालाल जी जैन की जन्म शताब्दी वर्ष (५ मार्च १९१० - ५ मार्च २०११) में आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों की श्रृंखला में श्रद्धेय साहित्याचार्य जी की प्रतिभावान शिष्या माननीय न्यायाधिपति श्रीमती विमला जैन का हार्दिक अभिनन्दन एवं आत्मीय स्वागत समारोह एवं जन्म शताब्दी वर्ष के समापन के सुअवसर पर श्रद्धेय साहित्याचार्य जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा 'जीवन को सर्वश्रेष्ठ कैसे बनायें' विषय पर स्मृति व्याख्यान माला का आयोजन किया गया।

नालन्दा विश्वविद्यालय

पालि भाषा और बौद्ध धर्म की शिक्षा के अनुसंधान हेतु पूर्वी एशिया के सोलह राष्ट्रों के सहयोग से नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना की जा रही है। डॉ० राजेन्द्र कुमार बंसल, संयुक्त राष्ट्रीय महामंत्री अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद, ने माननीय श्री एस०एम० कृष्णजी, विदेश मंत्री, से पत्र दिनांक १२-६-१० द्वारा अनुरोध किया था कि बुद्ध और महावीर समकालीन थे, अतः नालन्दा विश्वविद्यालय में बौद्धधर्म और पालि भाषा के साथ-साथ जैन दर्शन और प्राकृत-अपभ्रंश भाषा की शिक्षा का अनुसंधान भी किया जाये।

माननीय विदेश मंत्रीजी ने पत्र क्रमांक ११६२५/इ.ए.एम.ओ/२०१० दिनांक १६-११-१० द्वारा सूचित किया है कि वे डॉ० बंसल के सुझावों को प्रो० अमर्त्य सेन, अध्यक्ष, गवर्निंग बोर्ड, नालन्दा विश्वविश्वविद्यालय, के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत करेंगे।

जैन गणित पाण्डुलिपियों पर राष्ट्रीय सेमिनार

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के जन्म कल्याणक दिवस के उपलक्ष में राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन, भारत सरकार, नई दिल्ली एवं कुन्द-कुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, द्वारा २७ से २६ मार्च २०११ को जैन गणित पाण्डुलिपियों पर राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया गया। सेमिनार का उद्घाटन मध्य प्रदेश के राज्य मंत्री श्री महेन्द्र हर्डिया ने किया। देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, के कुलपति प्रो. पी.के. मिश्रा ने अध्यक्षता की। मुख्य अतिथि प्रो. नरेन्द्र धाकड़ थे और संयोजक डॉ. अनुपम जैन थे। सेमिनार में ८ सत्र हुए, जिनमें १२ गणित विशेषज्ञों के व्याख्यान तथा २२ शोध पत्रों का वाचन किया गया। भाग लेने वाले विद्वानों में श्रमणी कुसुम प्रज्ञा जी (लाडनूं), श्री एस.के.बंडी (उज्जैन), ब्र. संदीप सरल (बीना), डॉ. प्रेमचन्द रांवका (जयपुर), डॉ. सुरेखा मिश्र, डॉ. भागचन्द्र जैन भागेन्दु (दमोह), डॉ. देवेन्द्र कुमार (रीवा), श्री रमेश चन्द कासलीवाल, श्री सुरेश चंद जैन बारौलिया (आगरा), डॉ. प्रकाशचंद, श्री सूरजमल बोहरा एवं डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर) उल्लेखनीय हैं। कुन्द-कुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, के अध्यक्ष श्री अजित कुमार कासलीवाल ने धन्यवाद ज्ञापन किया। इस सेमिनार की सूचना श्री बारौलिया के सौजन्य से प्राप्त हुई। विवरण पत्रिका भी कुन्द कुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर, ने प्रकाशित की है।

सुरक्षा हेतु सावधानी अपेक्षित

मोबाइल पर बात करते समय आप कहीं जा रहे हैं, कब लौटेंगे, क्या करने जा रहे हैं, आदि जानकारी कभी न दें।

सार्वजनिक स्थलों पर बातचीत करते समय इस बात का ध्यान रखें कि कोई आपकी बात ध्यान से तो नहीं सुन रहा है।

आर्थिक मामलों (रुपये लाने ले जाने) की बातचीत, सार्वजनिक स्थलों, कंपनी में सबके सामने या घर पर नौकरों के सामने कभी न करें।

अपना मोबाइल नंबर, अकाउंट नंबर, सिक्रेट कोड या गोपनीय बातें फोन पर न बताएं।

पैसे की डिलेवरी (लेन-देन) की बातचीत एकांत में करें।

ताला बन्द करके कहीं जा रहे हैं या घर पर आप या बच्चे अकेले हैं, ऐसी बातें किसी के सामने न करें। भले ही वह आपका परिचित ही क्यों न हो।

बड़प्पन दिखाने या झूठी शान दिखाने के लिये भी जेवर एवं पूंजी की चर्चा कभी न करें। पारिवारिक मामलों से जुड़ी बातें सार्वजनिक स्थानों पर न करें। अपने जीवन या घर की गोपनीय बातें किसी से घर पर भी न करें क्योंकि कहा जाता है 'मुँह बाहर बात, तो घर बाहर भी हो जाती है।'

अजनबी के लिए दरवाजा मत खोलें।

सेल्समैन से पहले पूछताछ करें।

घर में पुरुष के न होने पर ज्यादा सतर्क रहें।

अपरिचित से पहले गहन पूछताछ करें।

पाठकों के पत्र

श्री अमरनाथ, लखनऊ -

शोधादर्श-७१ प्राप्त हुआ। लघु आकार की पत्रिका होते हुये भी मात्र ८० पृष्ठों में इतिहास-भूगोल समेटे ४ लेख, जैन धर्म विषयक ३ लेख, अन्य ज्ञानवर्धक ३ आलेख, ५ कवितायें तथा अन्य स्थायी स्तम्भों को सहेजना ही गागर में सागर कहा जा सकता है अथवा सम्पादन-पाण्डित्य। निःसन्देह पूरा अंक पठनीय है। डॉ० परमानन्द जड़िया जी की कविता "साधक सिद्ध प्रवीण रहें" पाठकों में चेतना जगाती है।

पं० निहाल चन्द जैन का लेख "अहिंसा विमर्श" अहिंसा पर व्यापक दृष्टिपात कर रहा है। बहुत ही अच्छा लेख है लेकिन कुछ अनुत्तरित प्रश्न छोड़ रहा है जैसे कि लेखक के कथनानुसार "आप जिस दृष्टि से भरकर आये हो, उसी दृष्टि से बन्ध चुके हो। आप हिंसक दृष्टि लेकर आए तो हिंसक ही हो, भले ही आप उसके प्राणों का घात किसी योग से न कर पाये हों।" अब प्रश्न यह उठता है कि जब कोई सैनिक किसी दुश्मन फौज से लड़ने या कोई सिपाही किसी डकैत से भिड़ने जाता है तो उन दोनों की संरंभ दृष्टि तो हिंसा ही है। तो फिर उन्हें हिंसक क्यों नहीं माना जाय? जबकि लेखक सैनिक को हिंसा का दोषी नहीं मानते। दूसरा प्रश्न है कि किसी आततायी के चंगुल में फँसी किसी महिला या बच्चे को बचाने में गर आपको उस आततायी पर हिंसक प्रहार करना ही पड़ता है तो क्या वह हिंसा नहीं है? अहिंसा 'जियो और जीने दो' का मूल बीज है लेकिन यह परतन्त्रता का पोषक भी है। मौर्य काल में बौद्ध धर्म के चहुँमुखी विकास से भारत के नवयुवकों में आई क्लीवता, उन्हें राष्ट्रप्रेम से वंचित कर गयी।

विजय नगर साम्राज्य पर डॉ० ज्योति प्रसाद जैन का शोध पूर्ण लेख ज्ञानवर्धक है।

डॉ० ए. एल. श्रीवास्तव, भिलाई -

शोधादर्श का ७१वां अंक भी अपनी स्थापित परम्परा के अनुरूप है। जैन वांङ्मय का परिचय, समाज तथा मानव जीवन के उत्थान-विषयक सभी रचनाएं शिक्षाप्रद एवं विचारोत्तेजक हैं, विशेषकर 'साधुचर्या' को लेकर श्रीमती इन्दु कान्त जैन एवं श्री कैलाश चन्द जैन के मार्मिक प्रश्न। उनके समाधान के लिए जैन साधु साध्वी जनों को ही आगे आना चाहिए, क्योंकि श्रद्धालु भक्तजन तो वस्तुतः आस्था और विश्वास में आकण्ठ डूबे रहते हैं। सुधी जैन समाज के विचारवान नवयुवकों और नवयुवतियों को इस सुधारवादी महनीय कार्य में अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए। कविताएं भी अच्छी लगीं। आवरण नयनाभिराम है जो पाठकों को जैन धर्मस्थलों के

पर्यटन के लिए प्रेरणादायी है। ऐसे सुन्दर, गंभीर, चिन्तनपरक और धर्मसुधार सम्बन्धी रचनाओं के लिए हार्दिक बधाई!

श्री ओंकारश्री, उदयपुर –

शोधादर्श सचेत करता है महावीर व गान्धी के देश के प्रबुद्ध जैन श्रावकों व संवेदनशील पाठकों को, साधु समाज को।

शोधादर्श ७० में प्रकाशित मेरे लेख 'जैनत्व की कसौटी' का मनन कर देश के दूरस्थ देशों के चिन्तनशील श्रावकों की भावना जागी है। इसी क्रम में **शोधादर्श** के ७१ वें अंक के संपादकीय व श्रीमती इन्दु कान्त जैन व श्री कैलाश चन्द जैन के आलेखों ने फिर इस बात पर बल दिया है कि देश में अपवाद छोड़, अधिकांश जैन साधुवर्ग के व्यापक कदाचार को चुपचाप सहना, प्रबुद्ध श्रावकों को चतुर्विध संघ की शुचिता की रक्षा करने की दिशा में निष्क्रिय रहना अशोभनीय है। जिस कर्मकाण्डी धारा के विरुद्ध अतीत में क्रियोद्धारपरक जो अहिंसक जन-युद्ध छिड़ा था, आज जैन एकता के लिए फिर से उसका शंखनाद होना अनिवार्य हो उठा है। मुझे यह निर्भीकता पूर्वक कहने का साहस है कि जैन धर्म व संस्कृति पूरे देश की जनता की है। अंहिसा, अनेकांत एवम् अपरिग्रह के सिद्धान्त वाग् विलास के साधन नहीं है। दुःख है कि देश के जैनाचार्य जैन एकता की दिशा में, सकर्मक रूप से सर्वथा बाधक तत्वों से चतुर्विध संघ को बचा नहीं पा रहे हैं। देश की सुधर्मा जनता की निराशा बढ़ रही है। मुझे विश्वास है कि '**शोधादर्श**' जैन जनता की चेतना को मंद नहीं पड़ने देगा। संपादक के नाते आप जिस मर्यादा के साथ संघीय कदाचार का अहिंसक प्रतिकार कर रहे हैं, वह सराहनीय है। जिनवर प्रभु की परम-आत्मा के आशीर्वाद से जैन जनमत का जनाधार देश में अवश्य पनपेगा। शास्त्र ज्ञायक हैं, कारक तो जनता है। समय का तकाजा है कि देश की युवा शक्ति चेते। चतुर्विध संघ को चेतावे।

'मानव जीवन का यथार्थ बोध', 'अहिंसा विमर्श', 'तथाकथित वीर निर्वाण भूमि पावा की प्राचीनता' व श्रद्धेय डॉ. ज्योति प्रसाद का 'विजय नगर साम्राज्य' आलेख मननीय हैं।

शोध व सृजन के समुचित पक्षों को लेकर समूचे राष्ट्र व जैन जगत के समक्ष '**शोधादर्श**' सन्नद्ध-प्रतिबद्ध है और रहे। यह मेरी हार्दिक कामना है। पूज्य अजित प्रसाद जी, ज्योति प्रसाद जी और भाई रमाकान्त जैन की जैन जन चेतना की विरासत अमर रहे।

श्री जितेन्द्र कुमार जैन, मेरठ –

इस अंक में 'साधुचर्या - प्रश्न जो समाधान चाहते हैं' लेख श्रीमती इन्दु कान्त जैन का पढ़ा। पढ़कर मेरे अपने विचारों को बहुत बल मिला। मेरे बहुत विचार मुनि-

क्रियाओं पर हर समय करवट लेते रहते हैं। मुनि-क्रियाओं को सुन-देख हृदय में टीस उठती है - यह क्या हो रहा है?

पं. निहालचन्द जैन, बीना -

शोधादर्श ७१ प्राप्त हुआ। **शोधादर्श** की अपनी विशिष्ट परम्परा व शैली रही है जिसकी सुदृढ़ नीति में डा. ज्योति प्रसाद व श्री अजित प्रसाद जैसे मनीषियों की ज्ञान साधना और सुचिन्तन की फलश्रुति है। जैन धर्म के प्रति इतिहास पुस्तकों में अनर्गल बातें आयी हैं जिनके निरसन के लिये **शोधादर्श** की भी सक्रियता है।

हमारे दि. जैन साधुओं में प्रायः आत्मख्याति शीर्ष पर है।पंचकल्याणकों और बड़े विधानों की आयोजना के अलावा शिक्षा, स्वास्थ्य और संस्कारों के ठोस विकास और मानवीय सेवा के उपक्रम में रचनात्मक चिन्तन का अभाव महसूस कर रहा हूँ। कुछ आचार्यगण अवश्य इस दिशा में संलग्न हैं, वे प्रणम्य हैं और नमोस्तु शासन के सम्वर्धक हैं।

डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ -

शोधादर्श ७१ के मुख पृष्ठ पर पावापुरी के जल-मंदिर का चित्र सुन्दर है। श्रीमती इन्दु कान्त जैन ने साधुमंडली में प्रवेश कर रहे भोगवाद और धर्म के नाम पर हो रहे पाखंड पर जो प्रश्नचिन्ह लगाया है, वह सर्वथा उचित है। श्री अमरनाथ की कविता 'माटी की पुकार' अच्छी है परन्तु अधिक विस्तार में उसका सौन्दर्यबोध डूब गया है। यह शरीर मात्र मिट्टी से ही नहीं वरन् पंचतत्त्वों से बना है। शरीर के नष्ट हो जाने पर जीवात्मा शेष रहता है - उसी का महत्व है। डॉ. महावीर प्रसाद जैन ने पुष्पेन्दु को अपनी कविता में याद करके कवि धर्म का पालन किया है। डा. शशि कान्त ने अपने लेख में पुरुषार्थ चतुष्टय को सीधे सरल शब्दों में परिभाषित किया है। लेख पठनीय तथा मननीय है। अहिंसा को तो सभी धर्मों में श्रेष्ठ बताया गया है परन्तु गीता में निष्काम कर्म योग के अंतर्गत अर्जुन को गांडीव उठाने का निर्देश किया गया है। शत्रु देश पर आक्रमण कर रहा हो, नारी की लाज लुट रही हो, तब उसका प्रतिरोध बल पूर्वक करना ही चाहिये। कुल मिलाकर अंक पठनीय सामग्री से युक्त है, बधाई!

श्री प्रेम कुमार जैन, विदिशा -

शोधादर्श ७१ प्राप्त कर अध्ययन किया। पं. निहालचन्द जी बीना ने अहिंसा विमर्श में अहिंसा की सार्वभौमिकता एवं सर्वकालिकता का बड़ा सूक्ष्म विवेचन किया है जो पठन, मनन, ग्रहण योग्य है।

बहन इन्दु कान्त जैन ने साधुचर्या पर लिखकर हमारे साधु समाज की अमर्यादा पर स्वानुभव से विवेचन किया। हमारे समाज को चौकसी रखनी चाहिये। अगर

साधु शिथिलाचार पर सोनगढ़ धारा वाले कुछ कहते हैं तो क्या गलत करते हैं? आशा है हमारे विद्वान, श्रेष्ठीजन एवं स्वयं साधुजन ध्यान देंगे।

श्री बी. डी. अग्रवाल, लखनऊ –

मैने पत्रिका को आद्योपांत पढ़ा। सभी लेख गहन शोध व परिश्रम से लिखे हुये हैं। आपके निर्देशन में सम्पादन, छपाई व प्रस्तुतिकरण प्रशंसनीय है। इस पत्रिका द्वारा जैन धर्म की अच्छी सेवा हो रही है। आप लोग बधाई के पात्र हैं। पत्रिका के उज्जवल भविष्य के लिये शुभकामनायें!

डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु', दमोह –

पावापुरी के नयनाभिराम जल मंदिर के प्राकृतिक और सांस्कृतिक परिवेश को प्रत्यक्षवत् प्रस्तुत करते सचित्र मुखपृष्ठ के साथ पावा की प्राचीनता पर डॉ. शिवप्रसाद के समीक्षात्मक आलेख के साथ **शोधादर्श** का ७१वां अंक हाथ में है।

समाज, संस्कृति, इतिहास और साधु-संस्था के ज्वलन्त पक्षों को बेबाक उजागर करता यह अंक सामयिक सन्दर्भों को भी अपने में समाविष्ट किये है। श्री कैलाशचन्द जैन कोलकाता की टिप्पणी 'सुमेरूचन्द दिवाकर कहां हैं?' आज के परिवेश में अधिक गम्भीर चिन्तन और क्रियान्वयन चाहती है।

सातवीं शती के महाकवि भारवि का यह कथन--

स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थ गौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां, न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्।।

शोधादर्श में आपके द्वारा संजोयी गयी सामग्री के हार्द को चरितार्थ करता है।

शोध के आदर्शों और मानदण्डों को सुरक्षित रखते हुए इस कठिन कार्य को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति लखनऊ' अनवरत अक्षुण्ण रखते हुए प्रवर्द्धमान है। अतः पुनः पुनः आपका एवं आपके सभी साथियों सहयोगियों का हार्दिक अभिनंदन-अभिवादन करते हैं। शिवास्ते सन्तु पन्थानः।

श्री महेश जैन, सिकन्दराबाद (जिला बुलन्दशहर) –

शोधादर्श ७० पढ़ा। अंग्रेजी चिंतन का अनुवाद जरूर छापने का कष्ट करें। यदि पंचकल्याणकों में भ्रूण हत्या करवाने वालों को बोली लेने से रोका जाए, मुनि अपने शिष्यों-भक्तों को नियम दिलायें तो यह पाप-अपराध रुक सकता है।

जैन मुनियों को नाम, बाजों, फोटो वगैरह से प्यार है। दाढ़ी, चश्मा, गाड़ी, मोटे पहलवानों जैसा शरीर क्या जैन मुनि का हो सकता है? एक महाराज ने एक माता का ४ माह का गर्भपात कराया फिर भी जैन समाज उनकी पूजा कर रहा है – खेद की बात है।

डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई -

शोधादर्श, नवम्बर, २०१०, अंक सामने है। श्री नलिन कान्त जैन का सम्पादकीय प्रेरक है। जहाँ-जहाँ पाठ्यपुस्तकों में अनुचित उल्लेख हो, उसका साधार शुद्धिकरण का प्रयास करना अपेक्षित है। सी.बी.एस.ई. कोर्स कक्षा ६ की पुस्तक में भगवान महावीर से संबंधित तथ्यों का शुद्धिकरण लेखक के प्रयास से वर्ष २०१० की पुस्तक में हो गया है। ग्यारहवीं कक्षा की पुस्तक में शुद्धिकरण करवाने की सूचना **सन्मतिवाणी** (फरवरी २०११, अंक पृ. २०-२१) के अनुसार सोशियल ग्रुप द्वारा पोस्टर निकालकर व श्री खिल्ल्लीमल जी के प्रयासों से हुआ, ऐसा प्रकाशित हुआ है। सम्पादकीय के अनुसार **शोधादर्श-३४** को देखा। भाई डॉ. शशि कान्त जी ने जागरूकता पूर्वक ठोस, सार्थक प्रयास किया। उनका और अन्य सबका अभिनन्दन।

गुरुगुण-कीर्तन के अंतर्गत स्व. भाई श्री रमा कान्त जी की कृति 'पंडित प्रभाचन्द्र' शोधपूर्ण मार्गदर्शक है। **जैन विद्या** मार्च २०१० में मेरा आलेख भी प्रकाशित है किन्तु भाई श्री रमा कान्त जी के आलेख की विशेषता यह है कि उसमें उन्होंने प्रभाचन्द्र नाम के अन्य १४ आचार्य/विद्वानों की सूचना दी है। उनकी श्रम साधना को नमन!

श्री अजित प्रसाद जी एवं डॉ. शिवप्रसाद जी के भगवान महावीर की निर्वाण-भूमि पावा के सम्बन्ध में शोधपूर्ण आलेख मार्गदर्शक और निर्णयात्मक हैं। समाज को मान्यता देनी चाहिये। **शोधादर्श** सम्पादक स्व. श्री अजित प्रसाद जी ने इसी प्रकार भगवान महावीर की जन्मभूमि वासोकुण्ड-वैशाली का समर्थन/पुष्टि की थी, जहाँ अब भव्य विशाल जिनालय का निर्माण हो रहा है। दि. १६अप्रैल को भ. महावीर की मूर्ति वेदिका में विराजित होगी। लेखक ने भी लोक सर्वेक्षण द्वारा जन्म-भूमि होने की पुष्टि/सिद्धि की थी। **शोधादर्श** के प्रयासों, निर्भीकता एवं तटस्थ मूल्यांकन के लिए जैन संस्कृति ऋणी रहेगी।

डॉ. शशि कान्त जी एवं प्राचार्य श्री निहालचन्द जी के आलेख सहज, शोधपरक और दिशा बोधक हैं। जीवन में नैतिक मूल्यों, सदाचार एवं भावहिंसा के अभाव की आवश्यकता है जिसके आगोश में जैन समाज भ्रमित हुआ है। सैद्धान्तिक चर्चा से व्यक्ति और समाज का हित नहीं होता जब तक कि उसे जीवन में अनुभूत नहीं किया जाये। विश्वास है कि इन आलेखों से समाज प्रेरणा लेगी।

भ्रष्ट साधुचर्या के सम्बन्ध में श्रीमती इन्दु कान्त जैन के आलेख 'प्रश्न जो समाधान चाहते हैं' की लेखिका एवं **शोधादर्श** के साहस को रेखांकित करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। साधुचर्या की भ्रष्टता/विकृतियां सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन कर गयी हैं। मेरे एक मित्र के अनुसार नग्न होकर पिच्छी कमंडल ले लो और कितना

ही निंद्य कार्य करलो, समाज पूजती रहेगी। स्थिति भयंकर रूप से बिगड़ी है। इस सम्बन्ध में समाज की जागरूकता ही सुधार ला सकती है। स्व. साहु श्री रमेशचन्द्र जी के सुधार हेतु अनुरोध पर लेखक ने साधुचर्या के विभिन्न पहलुओं पर शोध आलेख लिखकर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाये थे। इन आलेखों को संग्रहीत कर **'संयम साधक साधु'** नामक पुस्तक प्रकाशित की। काल दोष के प्रभाव के कारण विकृतियाँ एवं भोगेच्छा रूप अनाचार अपनी सीमा पार कर गया है। परमपूज्य आचार्य सूर्य सागर जी महाराज ने **संयम प्रकाश** में स्पष्ट निर्देश दिया है कि श्रावकों का कर्तव्य है कि वह साधु-संस्था को आगमानुसार आचरण करने के लिए बाध्य करें। यदि श्रावक असफल होते हैं तो राजा इसे ठीक करेगा। संकेत स्पष्ट है कि राजदण्ड का भय ही अंतिम आशा है। किन्तु तब तक सब कुछ समाप्त हो जायेगा। श्रमण संस्कृति तार-तार हो जायेगी। हम आशा करते हैं कि ऐसा अशुभ क्षण समाज के समक्ष नहीं आयेगा। पत्र-पत्रिकाओं, विद्वानों एवं शीर्ष संस्थाओं के पदाधिकारियों को पंथव्यामोह त्याग कर पं. श्री सुमेरुचंद दिवाकर **शोधादर्श-७१,** पृ.४७, के अनुरूप आगमिक चर्या हेतु भ्रष्ट साधुओं को प्रभावी रूप से प्रेरित करना होगा।

जिन-मुद्रा के व्यवसायीकरण और उसकी अनुमोदना से नरक निगोद का बंध होता है। चमत्कारी-विषयासक्त साधुओं के कारण आगमिक और आत्मनिष्ठ साधुओं की उपेक्षा हो रही है।

स्थायी स्तम्भ श्रम साध्य होकर मार्गदर्शक एवं प्रेरक हैं। साहित्य सत्कार के अंतर्गत भाई डॉ. शशि कान्त जी ने २४ पुस्तकों की सार्थक-समीक्षा लिखकर पाठकों का मार्ग दर्शन किया है और कृतियों तथा उनके लेखकों का परिचय कराया है। इसमें एक प्रथम कृति लेखक की भी है। डॉ. शशि कान्त जी की श्रम-साधना को नमन!

शोधादर्श के अन्य आलेख एवं कविताएं शोधपरक एवं प्रेरक हैं। पाठकों के पत्रों के अंतर्गत १६ पाठकों की भावनाएँ/अभिमत /गद्य/पद्य में प्रकाशित हैं। इससे **शोधादर्श** के प्रति पाठकों की रुचि, उपादेयता एवं प्रकाश्य सामग्री की महत्ता का ज्ञान होता है। 'कन्याभ्रूण हत्या कैसे रोकें' (**शोधादर्श** ७० एवं ६६) के आलेखों पर सकारात्मक प्रतिक्रिया प्रतिपाद्य विषय की महत्ता एवं आवश्यकता को दर्शाती है।

शोधादर्श ६७-७१ की अनुक्रमणिका का प्रकाशन शोधार्थियों के लिये उपयोगी है। समग्र रूप से **शोधादर्श** पीढ़ियों के अन्तराल के बाद भी अपनी उत्कृष्ट परम्परा के स्तर को अक्षुण्ण बनाये हुए है, यह गौरव की बात है। समीक्षा लम्बी-लेखनुमा हो गयी। विवशता थी, पाठकगण क्षमा करेंगे। मुख पृष्ठ चित्ताकर्षक है। सभी सहयोगियों को सादर नमन!

वैद्य राजेश चन्द्र जैन, अलीगंज (जिला एटा) -

शोधादर्श ७१ के कई लेख गंभीर चिंतन एवम् ज्ञान के विकास में सहायक हैं यथा श्रीमती इन्दु कान्त जैन फिरोजाबाद व श्री कैलाश चन्द जैन कोलकाता का लेख साधुचर्या प्रश्न जो समाधान चाहते हैं, इस विषय पर दी गई जानकरी से अवगत हुआ। हमारे नग्न दिगम्बर जैन साधु मोह-माया-राग-द्वेष जैसे विकारों से अपने आपको मुक्त नहीं कर पा रहे हैं। नगर-बस्तियों के बीच में भ्रमण कर रहे हैं। रुपये पैसे के हिसाब किताब में लगे हुए हैं। रात्रि में बोलते हैं, महिलाओं के निकट बैठकर बातचीत करते हैं, मालिश कराते हैं, एअर कंडीशन में लेटते हैं - ये क्या दिगम्बर जैन मुनिराज पूजनीय-वन्दनीय हो सकते हैं, कदापि नहीं। फिर भी मुनिभक्त जैन विद्वान इन साधुओं की शिथिलता व भ्रष्टता के बारे में दो शब्द जैन पत्र-पत्रिकाओं में न भेजते हैं और न ही टिप्पणी करते हैं। जानकारी होते हुए भी मौन धारण कर लेते हैं। ऐसा आभास होता है कि ये अन्ध भक्त जैन विद्वान दिगम्बर जैन साधुओं से बिक चुके हैं।

अगर इन भ्रष्ट, परिग्रही, चरित्रहीन जैन साधुओं पर पाबन्दी न लगाई गई तो आने वाले समय में जैन धर्म का पतन हो जाएगा एवम् अजैन लोगों के बीच में हंसी का पात्र बनना पड़ेगा। इस प्रकार के लेख **शोधादर्श** में प्रकाशित करने पर सम्पादक श्री नलिन कान्त जी व उनके सहयोगियों एवं श्रीमती इन्दु कान्त जैन फिरोजाबाद व श्री कैलाश चन्द जैन कोलकाता को हार्दिक शुभकामनाएं!

श्री ललित कुमार नाहटा, नई दिल्ली -

जैन संघ की करीब ५०० पत्र-पत्रिकाएं निकलती हैं जिसमें प्रतिमाह मेरे पास ६०-७० आती भी हैं। मैं सभी पत्र-पत्रिकाओं को सरसरी तौर पर देखता भी हूँ। मात्र ३-४ पत्रिकाओं को जिसमें **शोधादर्श** भी एक है अलग रख कर फुरसत व निश्चिन्तता के समय पढ़ता हूँ। **शोधादर्श** में निर्भीकता व बिना लाग-लपेट के, बिना पक्षपात के, पढ़ने को मिलता है। इसके प्रति मन में विश्वास भी है कि जो भी पढूँगा वह सत्य ही होगा। बेबाक सटीक टिप्पणी लिखना-पढ़ना आजकल मिलता ही कहाँ है? आप अपनी लेखनी की निरन्तरता बनाये रखें, यही कामना है।

पं. सरमनलाल जैन दिवाकर, सरधना -

शोधादर्श ७१ पढ़कर तीर्थों, सामाजिक गतिविधियों तथा शोधपूर्ण लेखों से अभूतपूर्व जानकारियां प्राप्त हुईं। चिन्तन मनन पूर्ण सामग्री से आत्मीय सुख प्राप्त हुआ। **शोधादर्श** पत्र जैन समाज की पुराऐतिहासिक सामग्री से भरपूर रहता है। **शोधादर्श** की विशेषता - कभी आरोप प्रत्यारोप में नहीं पड़ता।

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र.

प्रबन्ध समिति

(१ जनवरी २०१० को सर्वसम्मति से निर्वाचित)

अध्यक्ष	श्री लूण करण नाहर जैन
उपाध्यक्ष	श्री नरेश चन्द्र जैन
महामंत्री	श्री नलिन कान्त जैन
संयुक्त मंत्री	डॉ. विनय कुमार जैन
उपमंत्री	श्री महेन्द्र प्रसाद जैन, श्री रोशनलाल नाहर
कोषाध्यक्ष	श्री बिजय लाल जैन
सदस्य प्रबन्ध समिति	डॉ. शशि कान्त, श्री सन्दीप कान्त जैन, श्री रोहित कुमार जैन, श्री धनेन्द्र कुमार जैन, श्री आदित्य जैन, श्री दीपक जैन, श्री अजय कुमार जैन कागजी, श्री अंशु जैन 'अमर' श्री राकेश कुमार जैन, श्री हंसराज जैन

प्रकाशन

भगवान महावीर स्मृति ग्रन्थ	सं. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	50/-
Bhagwan Mahavira: Life, Times & Teachings	**by Dr. Jyoti Prasad Jain**	**5/-**
Way to Health & Happiness - Vegetarianism	**by Dr. Jyoti Prasad Jain**	**4/-**
Mysteries of Life & Eternal Bliss	**by Prof. Anant Prasad Jain**	**7/50**
जीवन रहस्य एवं कर्म रहस्य	लेखक प्रो. अनन्त प्रसाद जैन	7/50

पांचों प्रकाशन मात्र रु. 70/- में प्राप्त किये जा सकते हैं। मूल्य लखनऊ में देय चेक या ड्राफ्ट द्वारा 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम महामंत्री को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-226004 के पते पर भेजा जाय।

छात्रवृत्ति

आवेदन पत्र के फार्म 31 जुलाई, 2011 तक प्राप्त कर लिये जायें। आवेदन पत्र भरकर 30 सितम्बर तक भेजना अनिवार्य है।

आवश्यक सूचना

वार्षिक शुल्क ६० रु. (साठ रुपये), 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४', को 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' के नाम लखनऊ में देय चेक अथवा ड्राफ्ट द्वारा भेजने का अनुग्रह करें। मनीआर्डर से भेजने पर उसकी सूचना एक पोस्टकार्ड पर भी अपने पूरे नाम पते के साथ अवश्य भेजें। विदेशों के लिए पत्रिका का वार्षिक शुल्क २५ डालर है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहियें। यथासंभव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। *लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें। अप्रकाशित लेख–रचना लौटाना कठिन होगा।*

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं की दो *प्रतियां* भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु *शोधादर्श* का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ–२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुँचने की सूचना भी देवें।

– सम्पादक